श्रीअरविन्द कर्मधारा

मई - जून 2024

श्रीअरविन्द आश्रम
दिल्ली शाखा का मुखपत्र
(मई - जून **2024)**
अंक - 3
संस्थापक
श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर 'फकीर'
सम्पादन - अपर्णा रॉय
विशेष परामर्श समिति
सुश्री तारा जौहर, विजया भारती
ऑनलाइन पब्लिकेशन
ऑफ
श्रीअरविन्द आश्रम, दिल्ली शाखा
(निःशुल्क उपलब्ध)
कृपया सब्सक्राइब करें-
saakarmdhara@rediffmail.com
कार्यालय
श्रीअरविन्द आश्रम, दिल्ली-शाखा
श्रीअरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016
दूरभाषः 26567863, 26524810
आश्रम वैबसाइट
(www.sriaurobindoashram.net)

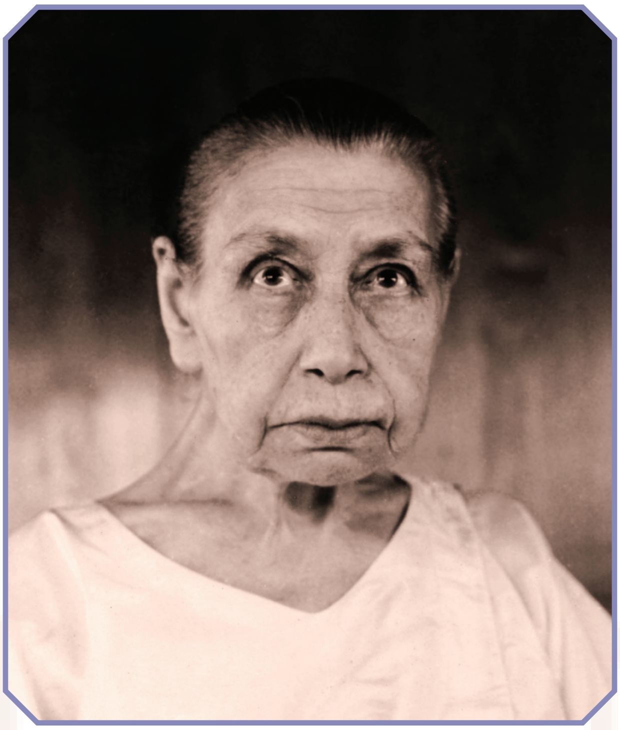

प्रार्थना और ध्यान

17 जून, 1913

हे प्रभु, वर दे कि मैं वह अग्नि बनूँ जो प्रकाश देती है और गर्मी पहुँचाती है,

वह स्रोत बनूँ जो प्यास बुझाता है, वह वृक्ष बनूँ जो छाया तथा आश्रय देता है।

मनुष्य इतने दुःखी है, इतने अज्ञान में हैं कि उन्हें सहायता की बहुत आवश्यकता है।

तेरे ऊपर मेरा विश्वास और भरोसा, मेरी आंतरिक निश्चयता दिन-दिन बढ़ रही है।

और दिन-दिन ही तेरा प्रेम मेरे हृदय में अधिक सजग हो रहा है,

तेरा प्रकाश अधिक उज्ज्वल तथा कोमल बन रहा है।

मैं अधिकाधिक तेरे कर्म और अपने जीवन में तथा अपने व्यक्तित्व

और संपूर्ण पृथ्वी में भेद नहीं कर पा रही।

प्रभु, हे प्रभु, तेरा तेज अनंत है, तेरा सत्य अद्भुत है। तेरा परम शक्तिशाली प्रेम

संसार का उद्धार करेगा।

विषय-सूची

- सम्पादकीय 5
- एक दिवस और 9
- आयी मौज फ़क़ीर की 11
- अन्य पृथ्वी लोक 13
- प्रगति 14
- भारतीय संस्कृति के एक बुद्धिवादी आलोचक-2 21
- सावित्री (पर्व 1 सर्ग 4) 26
- रूप 32
- सत्य एक व्याख्या 33
- आश्रम गतिविधियाँ 45

सम्पादकीय

प्रिय पाठक गण

कहते हैं प्रकृति ने विकासक्रम की परंपरा में सर्वप्रथम वनस्पति-जगत उसके बाद प्राण-जगत तदुपरांत मनोमय जगत का निर्माण किया। मनोमय जगत, जिसमें मनुष्य मन लेकर आया। मनुष्य ही है जो मनोमय जगत का प्रतिनिधित्व करता है। मन-प्राण और शरीर इन तीनों को इस सृष्टि में लाने वाला प्राणी मनुष्य है, लेकिन विडंबना कुछ ऐसी है कि वह भूल जाता है कि उसे अपने इन तीनों यंत्रों का सजग प्रयोग कैसे करना है। वह इस सतर्कता से चूक जाता है कि यह तीनों यंत्र उसके हैं। जिन्हें उसे सही प्रयोग के द्वारा अपनी प्रगति का माध्यम बनाना है और इसका परिणाम यह होता है कि यह तीनों उसके मालिक बन बैठते हैं। मन अपनी मनमानी करता है, प्राण अपने हठ के वशीभूत उसका चैन हर लेता है और शरीर इन दोनों के चंगुल में फंस अंततः उसे असहाय बना देता है। श्रीमाँ और श्रीअरविंद ने अपनी शिक्षाओं के माध्यम से हमें बताया है कि हमें सजग और सचेतन रूप से अपने इन यंत्रों को सही समय पर सही रूप में प्रयोग करना चाहिए। अगर मन शाँत और सचेतन रहे तो वह अद्भुत क्षमता का प्रदर्शन कर सकता है।

ठीक यही बात प्राण के साथ भी होती है और यदि हम अपने मन और प्राण का चैत्यीकरण करने में सफल रहते हैं तो शारीरिक सीमाओं के भी मोहताज नहीं रहते। ऐसे में यह तीनों ही यंत्र हमारे चैत्य के अद्भुत उपकरण बन जाते हैं जो हमें जीवन के समुचित विकास, आंतरिक प्रगति और दिव्य रूपांतरण के पथ में सहायक बन पड़ते हैं। हमारे महान ग्रन्थों-वेद, उपनिषद, गीता, रामायण और महाभारत में मनुष्य जीवन के दिव्य रूपांतरण के लिए चमत्कारिक सूत्र उपलब्ध हैं । कहते हैं...,

एक गाँव में एक बढ़ई रहता था। वह शरीर और दिमाग से बहुत मजबूत था। एक दिन उसे पास के गाँव के एक अमीर आदमी ने फर्नीचर फिट करने के लिए बुलाया। जब वहाँ का काम खत्म हुआ तो लौटते वक्त शाम हो गई तो उसने काम के मिले पैसों की एक पोटली बगल में दबा ली और ठंड से बचने के लिए कंबल ओढ़ लिया। वह चुपचाप सुनसान रास्ते से घर की ओर रवाना हुआ। कुछ दूर जाने के बाद अचानक उसे एक लुटेरे ने रोक लिया। डाकू शरीर से तो बढ़ई से कमज़ोर था पर उसकी कमज़ोरी को उसकी बंदूक ने ढक रखा था।

अब बढ़ई ने उसे सामने देखा तो लुटेरा बोला- 'जो कुछ भी तुम्हारे पास है, सभी मुझे दे दो नहीं तो मैं तुम्हें गोली मार दूँगा।' यह सुनकर बढ़ई ने पोटली उस लुटेरे को थमा दी और बोला- 'ठीक है यह रुपये तुम रख लो मगर मैं घर पहुँच कर अपनी बीवी को क्या कहूँगा। वो तो यही समझेगी कि मैंने पैसे जुए में उड़ा दिए होंगे। तुम एक काम करो, अपने बंदूक की गोली से मेरी टोपी में एक छेद कर दो ताकि मेरी बीवी को लूट का यकीन हो जाए।' लुटेरे ने बड़ी शान से बंदूक से गोली चलाकर टोपी में छेद कर दिया। अब लुटेरा जाने लगा तो बढ़ई बोला- 'एक काम और

कर दो, जिससे बीवी को यकीन हो जाए कि मुझे लुटेरों के गैंग ने मिलकर लूटा है। वरना मेरी बीवी मुझे कायर समझेगी। तुम इस कंबल में भी चार-पाँच छेद कर दो।' लुटेरे ने खुशी खुशी कंबल में गोलियाँ चलाकर छेद कर दिए। इसके बाद बढ़ई ने अपना कोट भी निकाल दिया और बोला- 'इसमें भी एक दो छेद कर दो ताकि सभी गाँव वालों को यकीन हो जाए कि मैंने बहुत संघर्ष किया था।' इस पर लुटेरा बोला- 'बस कर अब। इस बंदूक में गोलियाँ भी खत्म हो गई हैं।'

यह सुनते ही बढ़ई आगे बढ़ा और लुटेरे को दबोच लिया और बोला- 'यही तो मैं चाहता था। तुम्हारी ताकत सिर्फ़ ये बंदूक थी। अब ये भी खाली है। अब तुम्हारा कोई ज़ोर मुझ पर नहीं चल सकता है। चुपचाप मेरी पोटली मुझे वापस दे दो वरना...

यह सुनते ही लुटेरे की सिट्टी पिट्टी गुम हो गई और उसने तुरंत ही पोटली बढई को वापिस दे दी और अपनी जान बचाकर वहाँ से भागा।

यहाँ हमने देखा कि बढ़ई ऐसा कर सका क्योंकि कठिन समय में भी उसका मन शांत और स्थिर था,वह घबराया नहीं था...।

इसी प्रकार यदि हम अपने अन्दर उच्च प्राणिक चेतना कायम रख सकें तो भी परिणाम इतने ही अद्भुत होंगे...। जैसा कि निम्नांकित कथा कहती है -

पुराने ज़माने की बात है। एक राजा ने दूसरे राजा के पास एक पत्र और सुरमे की एक छोटी सी डिबिया भेजी। पत्र में लिखा था कि जो सुरमा भिजवा रहा हूँ, वह अत्यंत मूल्यवान है। इसे लगाने से अंधापन दूर हो जाता है। राजा सोच में पड़ गया। वह समझ नहीं पा रहा था कि इसे किस-किस को दे। उसके राज्य में नेत्रहीनों की संख्या तो अच्छी-खासी थी पर सुरमे की मात्रा बस इतनी थी जिससे केवल दो आँखों की रोशनी लौट सकती थी।

राजा इसे अपने किसी अत्यंत प्रिय व्यक्ति को देना चाहता था। तभी राजा को अचानक अपने एक वृद्ध मंत्री की स्मृति हो आई। वह मंत्री बहुत ही बुद्धिमान था,मगर आँखों की रोशनी चले जाने के कारण उसने राजकीय कामकाज से छुट्टी ले ली थी और घर पर ही रहता था। राजा ने सोचा कि अगर उसकी आँखों की ज्योति वापस आ गई तो उसे उस योग्य मंत्री की सेवाएँ फिर से मिलने लगेंगी।

राजा ने मंत्री को बुलवा भेजा और उसे सुरमे की डिबिया देते हुए कहा- 'इस सुरमे को आँखों में डालें। आप पुन: देखने लग जाएँगे। किन्तु ध्यान रहे यह केवल 2 आँखों के लिए है।' मंत्री ने एक आँख में सुरमा डाला। उसकी रोशनी आ गई। उस आँख से मंत्री को सब फिर से दिखने लगा। उसने बचा-खुचा सुरमा अपनी जीभ पर डाल लिया।

'यह आपने क्या किया ? राजा ने घबरा कर कहा।

अब तो आपकी एक ही आँख में रोशनी आ पाएगी। लोग आपको काना कहेंगे।'

मंत्री ने जवाब दिया- "राजन, चिंता न करें। मैं काना नहीं रहूँगा। मैं आँख वाला बनकर

हज़ारों नेत्रहीनों को रोशनी दूँगा। मैंने चखकर यह जान लिया है कि सुरमा किस चीज़ से बना है। मैं अब स्वयं सुरमा बनाकर नेत्रहीनों को बाँटूंगा।'

राजा ने मंत्री को गले लगा लिया और कहा- "यह हमारा सौभाग्य है कि मुझे आप जैसा मंत्री मिला"

विवेक और सद्भाव जागृत रहे तो समाज की समस्याओं का उपयुक्त समाधान किया जा सकता है अन्यथा व्यक्ति केवल अपने स्वार्थ से सच्ची प्रगति नहीं कर सकता।

ऐसे में गीता हमें सच्ची राह दिखाती है। श्रीअरविन्द गीता प्रबन्ध में कहते हैं-

"आधुनिक मन अभी तो यूरोपीय मन है, जैसा कि वह उस उच्चतम यूनानी-रोमन संस्कृति के दार्शनिक आदर्शवाद, जहाँ से उसने आरंभ किया था, को छोड़कर ही नहीं अपितु मध्य युग के ईसाई भक्तिवाद को भी छोड़ने के बाद बन गया है। उन्हें इसने व्यावहारिक आदर्शवाद और सामाजिक, राष्ट्र-संबंधी और परोपकारी भक्ति में बदल दिया है या इनके द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया है। इसने भगवान् से छुटकारा पा लिया है या उसे केवल रविवार के उपयोग के लिए रख दिया है और 'उनके' स्थान पर मनुष्य को अपने देवता के रूप में और समाज को उसकी प्रत्यक्ष मूर्ति के रूप में स्थापित कर लिया है। अपने अच्छे-से-अच्छे रूप में यह व्यावहारिक, नैतिक, सामाजिक, लौकिक, परोपकारवादी, मानवतावादी है।... वह केवल मानवता में निवास करता है, और गीता हमें भगवान् में, हालाँकि जगत् के लिये भगवान् में, निवास करने के लिए कहती है; वह (आधुनिक मन) केवल अपने जीवन, हृदय और बुद्धि में ही निवास करता है, और गीता हमें आत्मा में निवास करने के लिए कहती है; वह क्षर सत्ता में निवास करता है जो "सभी प्राणी" हैं, और गीता हमें अक्षर और पुरुषोत्तम में भी निवास करने के लिए कहती है; वह काल की परिवर्तनशील गति में निवास करता है, और गीता हमें शाश्वत में निवास करने के लिए कहती है। या फिर यदि इन उच्चतर वस्तुओं की अब अस्पष्ट रूप से परिकल्पना की भी जाने लगी है, तो भी यह केवल उन्हें मनुष्य और समाज के अधीन करने के लिए ही है; परंतु भगवान् और आध्यात्मिकता अपने-आप में स्वतंत्र रूप से अस्तित्वमान हैं, सहायक के रूप में नहीं और व्यवहार में हमारे भीतर के निम्नतर भाग को उच्चतर के लिए अस्तित्वमान रहना सीखना चाहिए, ताकि उच्चतर भी हमारे भीतर सचेतन रूप से निम्नतर के लिए अस्तित्वमान रह सके, इस निम्नतर को अपने स्वयं की ऊँचाइयों के निकट खींच सके।

अतः आज की मनोवृत्ति के दृष्टिकोण से गीता की व्याख्या करना और इसे सर्वोच्च और सर्व-संपूर्ण विधान के रूप में हमें निःस्वार्थ कर्तव्यपालन की शिक्षा देने को बाध्य करना एक त्रुटि है। जिस परिस्थिति का हल करने की गीता चेष्टा करती है उसका थोड़ा- बहुत विचार करने से ही यह स्पष्ट हो जायेगा कि गीता का ऐसा अभिप्राय हो ही नहीं सकता था। क्योंकि, गीता के उपदेश का संपूर्ण आधार, जिससे इसका आविर्भाव हुआ है, और वह मूल कारण जो शिष्य को गुरु की शरण के लिए बाध्य करता है, कर्त्तव्य की एक-दूसरे से जुड़ी हुई विविध धारणाओं का जटिल रूप से उलझा हुआ वह संघर्ष है जिसका अंत मानव-बुद्धि के द्वारा खड़े किये गए सारे उपयोगी बौद्धिक

और नैतिक भवन के ढहने में होता है। मनुष्य जीवन में किसी-न-किसी प्रकार का संघर्ष प्रायः ही उत्पन्न हुआ करता है, जैसे कभी गार्हस्थ्य-धर्म और देश-धर्म या किसी उद्देश्य या अभियान की पुकार के बीच दुविधा, कभी स्वदेश के दावे और मानव जाति की भलाई या किसी बृहत्तर धार्मिक या नैतिक सिद्धांत के बीच संघर्ष। यहाँ तक कि एक आन्तरिक संकट या समस्या भी उत्पन्न हो सकती है, जैसी कि गौतम बुद्ध के जीवन में उपस्थित हुई थी, जिसमें अंतःस्थित भगवान् के आदेश का पालन करने के लिए सभी कर्त्तव्यों को त्याग देना, कुचल डालना और एक ओर फेंक देना होता है। मैं नहीं सोच सकता कि गीता इस प्रकार के आंतरिक संकटकाल का समाधान बुद्ध को पुनः अपनी पत्नी और पिता के पास भेजकर और उन्हें पुनः शाक्य राज्य की बागडोर हाथ में देकर करेगी; न ही यह एक रामकृष्ण को किसी स्वदेशी पाठशाला में पंडित बनकर छोटे बालकों को निष्काम भाव से पाठ पढ़ाने का निर्देश करेगी; न ही यह एक विवेकानन्द को अपने परिवार के भरण- पोषण करने के लिए बाध्य करेगी और इसके लिए निष्काम रूप से वकालत या चिकित्सा या पत्रकारिता का पेशा अपनाने को कहेगी। गीता निःस्वार्थ कर्त्तव्य पालन की नहीं अपितु दिव्य जीवन के अनुसरण की शिक्षा देती है, 'सर्वधर्मान्, सभी धर्मों का परित्याग कर के, एकमात्र परमात्मा की ही शरण ग्रहण करने की शिक्षा देती है; और एक बुद्ध, एक रामकृष्ण या एक विवेकानन्द की दिव्य क्रिया गीता की इस शिक्षा के पूर्णतः अनुरूप ही है। यही नहीं, यद्यपि गीता कर्म को अकर्म से श्रेष्ठ मानती है, परंतु कर्म-संन्यास का निषेध नहीं करती, अपितु उसे भी भगवान् तक पहुँचने के अनेक मार्गों में से एक के रूप में स्वीकार करती है। यदि उसकी प्राप्ति केवल कर्म तथा जीवन तथा सभी कर्त्तव्यों के त्याग करने से ही होती हो और भीतर से पुकार प्रबल हो तो इन सबको अग्नि में होम कर ही देना होगा, इसमें किसी का कोई वश नहीं चल सकता। भगवान् की पुकार अलंघ्य है, और अन्य किन्हीं भी हेतुओं के सामने इसकी तुलना नहीं की जा सकती।"

.... श्रीअरविन्द (गीता - प्रबंध)

साथियों ! श्रीअरविंद हमें जिस अतिमानस की ओर ले जाना चाहते हैं, उसके लिए हमें सामान्य भौतिक स्तर पर जीवन जीने वाले अपने मन-प्राण और शरीर को चैत्य के अनुशासन में लाते हुए धीरे-धीरे प्रगति की ओर बढ़ते हुए ही उसे उस ऊँचाई तक ले जाना होगा जहाँ जाने का निर्देश हमें गीता देती है और जो अंततः हमें श्री अरविंद के निर्देशित लक्ष्य की ओर जाने का मार्ग दिखाती है। श्री अरविंद कर्मधारा का यह अंक आपके सामने प्रस्तुत है, आशा है यह हम सबको आँतरिक प्रगति के मार्ग पर बढ़ने की प्रेरणा देगा। हार्दिक शुभेच्छाओं के साथ-

सस्नेह अपर्णा

एक दिवस और

नलिनी कांत गुप्त

'प्रार्थना और ध्यान' में 25 सितम्बर1914 को श्रीमां ने लिखा-

'पृथ्वी पर एक नया आलोक प्रकट होगा, एक नया जगत् जन्मेगा, और जिन बातों का वचन दिया गया है, **वे पूरी की जायेंगी।**'

बाद में, अर्थात् चालीस वर्ष की अवधि के बाद 29 फरवरी-29 मार्च 1956 को उन्होने अपने बयान में-काल-प्रयोग के संदर्भ में-परिवर्तन कर दिया। उन्होने उसे इस रूप में पुनः लिखा-

'पृथ्वी पर एक नया आलोक प्रकट हो रहा है, एक नया जगत् जन्म ले चुका है,

जिन बातों का वचन दिया गया था, **वे पूरी कर दी गई हैं।**'

परिस्थिति में परिवर्तन के कारण इस बदलाव की आवश्यकता थी। परिस्थिति की वास्तविकताओं में एक मूलभूत बदलाव आया है श्रीमाँ ने स्वयं एक दूसरे संदेश में, जो लगभग एक माह पश्चात् 24 अप्रैल 1956 को दिया गया था, स्पष्ट किया है-

'धरती पर अतिमानस का आविर्भाव अब एक वचन मात्र नहीं है बल्कि है एक जीवन्त तथ्य, एक वास्तविकता। यह यहाँ कार्यरत है और एक दिन आएगा जब सर्वाधिक अज्ञानी, सर्वाधिक अचेतन, सर्वाधिक अनिच्छुक लोग भी इसको पहचानने के लिए बाध्य होंगे।'

वह अपनी अंतदृष्टि का बार-बार उल्लेख करती हैं और अत्यधिक ज़ोरदार ढंग से घोषणा करती हैं कि नया जगत् जन्म ले चुका है, जन्म ले चुका है, जन्म ले चुका है, जन्म ले चुका है जैसे उसने तीन बार जन्म लिया हो। यह वहां पीछे की ओर विद्यमान है, यह गतिमान है, यह उन सब कठिनाइयों को पार कर जो इसे छिपाती हैं, अदम्य और अपराजेय ढंग से आगे बढ़ रहा है। अज्ञान का बाह्य प्रभाव इसको अनन्तकाल तक नियंत्रित नहीं रख सकता।

प्रगति जारी है। श्रीमाँ 3 फरवरी 1958 को अर्थात् लगभग दो वर्ष बीत जाने के बाद घोषणा करती हैं-एक महत्वपूर्ण घोषणा-धरती के तट पर एक पूर्ण विकसित अतिमानसिक नौका के आगमन की घोषणा। इसका मिशन था अपने भीतर उन मानव प्रणियों को वहन करना जो अतिमानसिक जीवन के लिए तैयार हैं। सारे दृश्य का वर्णन इतना सुन्दर, इतना सजीव, इतना मोहक था कि इसे पढ़कर बाहर की किसी लड़की ने श्रीमाँ को लिखा कि वह नौका पर एक यात्री होना चाहती है और श्रीमाँ से प्रवेश के लिए प्रार्थना की। श्रीमाँ स्पष्ट करती हैं कि जिस तत्त्व से इस नवीन जगत् का निर्माण हुआ था, वह अत्यधिक भौतिक अतिमानसिक था- अतिमानसिक तत्त्व जो भौतिक जगत् के सर्वाधिक निकट है, इसका प्रथम आविर्भाव।

एक बार श्रीमाँ पुनः अपनी अंतर्दृष्टि की सत्यता को 1961 के उस नववर्ष संदेश में पुष्ट करती

हैं जो उन्होंने अपने बच्चों को दिया था-

'यह आनन्द का अद्भुत जगत् हमारे द्वार पर हमारे आह्वान की प्रतीक्षा कर रहा है, धरती पर नीचे आने के लिए.....'

निस्संदेह, यह अंत नहीं है, परमोत्कर्ष नहीं है। अभी भी एक कदम उठाना है-भौतिक पदार्थ को स्पर्श किया जाना है, पुनः गढ़ा जाना है-और इसका अर्थ है अंत मे एक रिक्ति, एक अन्तराल। सर्जन की प्रक्रिया सदैव इस पथ का अनुसरण करती है। धरती पर जिस वस्तु का निर्माण किया जाना है या मूर्त रूप दिया जाना है, उसको पहले सूक्ष्म जगत् में निर्मित किया जाता है। जब यह तैयार हो जाती है, उस जगत् में निर्मित हो जाती कॉस्मिक संकल्प के अनुसार धीरे-धीरे या क्रमशः या एकाएक स्वयं को भौतिक जगत् में उत्पन्न करती है। इस बात को समझाने के लिए श्रीमाँ स्वयं एक उदाहरण देती हैं।

एक बार, भारत की स्वाधीनता के बारे में पूछे जाने पर-1915 में किसी समय जब भारत पूर्णतया बन्धनग्रस्त था, उन्होंने थोड़ी भी हिटकिचाहट के बिना कहा था- 'भारत स्वतंत्र है।' उन्होंने यह नहीं कहा'भारत स्वतंत्र होगा।' उन्होंने एकदम कहा- ' भारत स्वतंत्र है।'-जैसे मानो एक वास्तविक तथ्य बतला रही हों। भौतिक तथ्य, फिर भी, 1947 में घटित हुआ अर्थात् सूक्ष्म जगत् में घटित घटना के बत्तीस वर्ष बाद। श्रीमाँ कहती हैं कि आविर्भाव के भौतिक सिद्धि के लिए बाधा का यह यथार्थ बिम्ब है।

मात्र निर्माण नहीं विनाश भी इसी ढंग से होता है। विनाश पहले सूक्ष्म जगत् में घटित होता है और उसी के परिणामस्वरूप अपरिहार्य रूप से भौतिक विनाश होता है। गीता में श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं तुम्हारे विरूद्ध पंक्तिबद्ध ये सेनाएँ मेरे द्वारा पहले ही मारी जा चुकी हैं, तुम्हे तो बस यन्त्र बनना है या बहाना बनना है।

सावित्री अपने सामान्य जीवन में धरती पर लौट रही है। वह अंतिम विजय प्राप्त कर चुकी है। और नयी विजय का सारा जगत्, अपने अंदर मूर्त्त दिव्य जीवन ले वह पार्थिव जीवन में प्रवेश कर रही है लेकिन अपने ऊपर अपनी उपलब्धि पर एक परदा डाले हुए। 'एक दिवस नहीं घट जाता, वह स्वयं को अनावृत नहीं करेंगी। यवनिका-पात हो गया है लेकिन पृष्ठभूमि में वह सारा प्रासाद स्थित है जो उसने बनाया है-अपने सम्पूर्ण अनिंद्य सौन्दर्य और परिपूर्णता के साथ। इस समय बाह्य रूप से हम अपने सामने एक धूसर भयानक जगत् की-पुराने जगत् की रंगभूमि देखते हैं। यवनिका निश्चित रूप से उठेगी और अपने पीछे यह जो कुछ छिपाये हुए है उसे धीरे-धीरे उद्घाटित करेगी या शायद अचानक ही एक खोल फट सकता है और एक पूर्ण एवं अखंड जीवन को सामने ला सकता है।... यह कैसे होगा... यह प्रकटन, यह प्रभु प्रकाश? घटना ही व्यक्त करेगी। इस दौरान, 'नव निर्माण' एक 'बृहत्तर उषा' वह अपने भीतर धारण किये हुए हैं-प्रकाश को अपनी गुह्य परतों से गहनतया सुरक्षित।

आयी मौज फ़कीर की.....

श्री सुरेन्द्र नाथ जौहर 'फ़कीर'

फ़कीर तो सदा मौज में ही रहे हैं। जिस फ़कीर की यह कहानी है वह पीछे बताऊँगा। पहले तो सुनिये कि वह फ़कीर कैसे हुआ?

बहुत युग नहीं बीता। थोड़े ही वर्षों की बात है। लखनऊ यूनिवर्सिटी के उपकुलपति (Vice-chancellor) बहुत धुरन्धर और प्रसिद्ध विद्वान थे। यह अंग्रेजों के जमाने की बात है जिसको ३०-३५ वर्ष ही हुए हैं। वाइस चांसलर एक बहुत बड़ा पद होता था और जितनी शान और रोब से वे रहते थे, अंग्रेज़ गवर्नर भी क्या रहते होंगे। हालत आजकल की यूनिवर्सिटियों की तरह नहीं थी।

ये सज्जन शायद बंगाली थे परन्तु लखनऊ में बसे हुए थे। उनकी स्त्री की क्या शान थी, रानियों की तरह रहती थीं। उठना-बैठना, खाना-पीना, मिलना-जुलना सब अंग्रेजों के ढंग पर होता था। फिर भी उस देवी के अन्दर कुछ गहरी बात थी जो ऊपर से नहीं दिखायी देती थी। लखनऊ यूनिवर्सिटी में एक अंग्रेज़ प्रोफेसर भी था। इन सब लोगों के असली नाम तो मैं भूल गया हूँ, लेकिन भगवान् की लीला जो हुई और उस लीला में उनके जो नाम थे वह मैं बतला रहा हूँ। इन देवी का आध्यात्मिक स्वरूप जब सामने आ गया तो इनको 'यशोदा माई' कहते थे।

अंग्रेज़ प्रोफेसर इन वाइस चांसलर के यहाँ बहुत आया-जाया करते थे। लखनऊ विश्वविद्यालय में आने से पहले यह अंग्रेज़ बनारस विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थे।

एक बार वाइस चांसलर की कोठी पर कोई बहुत बड़ा सरकारी समारोह हो रहा था। एकाएक बीच में से यह देवी गायब हो गयीं, हालाँकि इनका समारोह में उपस्थित रहना अत्यावश्यक था। जब इनकी खोज होने लगी तब यह अंग्रेज़ प्रोफेसर अन्दर उनको देखने गये और देखकर चकित रह गये कि वे एक छोटे से कमरे में ध्यान में लीन हैं। इनके सम्बन्ध में ऐसा सोचा भी नहीं जा सकता था। उस दिन से ये अंग्रेज़ प्रोफेसर इन देवी के, जिनका नाम बाद में 'यशोदा माई' हो गया था, शिष्य बन गये। यशोदा माई को इस अधेड़ उम्र में बीसियों रोग हो गये। मधुमेह (Diabetes), रक्तचाप (Blood Pressure), हृदय रोग (Heart disease), आदि घोर बीमारियाँ!

भगवान् ने उनको धन-दौलत, पद और सब व्यवस्थाएँ-सुविधाएँ दे रखी थी। कलकत्ता, बम्बई में बड़े से बड़े डाक्टरों से सम्पर्क किया जा सकता था और किया जाना चाहिये था। उस ज़माने में देश के बाहर लन्दन, स्विट्जरलैण्ड इत्यादि जगहों में ऐसे बड़े लोग इलाज के लिए जाया करते थे और यह देवी तो जा ही सकती थीं।

परन्तु अस्पतालों और नर्सिंग होम्स में जाने के बजाय उन्होंने क्या ठानी? घोर जगल में

अल्मोड़ा से भी २१ मील आगे जहाँ कोई सड़क नहीं, कोई राह नहीं कुछ ज़मीन लेकर बसीं और आश्रम बना लिया। ये अंग्रेज़ प्रोफेसर भी जो इनके शिष्य थे, साथ गये और अब इनका नाम श्रीकृष्णप्रेम हो गया। वहाँ जंगल में एक बहुत सुन्दर छोटा-सा मन्दिर बनाया और उसमें भगवान् कृष्ण की बहुत सुन्दर जीवन्त (Living) मूर्ति स्थापित की और इधर-उधर सुन्दर बगीचे लगाये तथा श्रीकृष्ण-भजन में मगन और लीन हो गये। इसी बीच दो-तीन विदेशी लोग और भी आकर उनके शिष्य बन गये। यशोदा माई शरीर की बीमारी और दशा को भूल कर भगवान की आराधना और भक्ति में रहने लगीं। वे एक बहुत ही बड़ी आश्चर्यजनक ऊँची आध्यात्मिक स्थिति में पहुँच गयीं और कुछ ही वर्षों में उन्होंने शरीर त्याग दिया।

हम लोग जब इस आश्रम को देखने गये तब यशोदा माई नहीं थीं। श्रीकृष्णप्रेम से सब जानकारी की कोशिश की परन्तु वह भी ऊँची स्थिति में रहते थे जिससे बहुत बातचीत नहीं हो पाती थी। हमें कुछ निराशा भी हुई। जब संध्या होने लगी तब हमने पूछा कि हम रात-भर यहाँ रह जायें परन्तु उन्होंने साफ इन्कार कर दिया और कहने लगे कि हमारे पास ऐसी सुविधा नहीं है। हम लोग दो-तीन मील पैदल चलकर एक डाक बंगले में रहे। प्रातः उठकर वापस लौटने की बजाय एक बार फिर इच्छा हुई कि यशोदा माई के आश्रम जाएँ।

वहाँ पहुँचकर श्रीकृष्णप्रेम से एक बार फिर सत्संग जोड़ा। हमने पूछा कि पहले तो आपके आश्रम में बहुत लोग बंगाल और उत्तर प्रदेश की तरफ से आया करते थे और दो-चार सौ लोगों के ठहरने का प्रबन्ध भी था। उन्होंने बताया कि २०-२५ वर्ष तक धीरे-धीरे लोग आते रहे और यहाँ उन्होंने आमोद-प्रमोद (Picnic) का स्थान बना लिया। वे लोग पूजा के दिनों में यहाँ महीना-दो महीना रहने के लिए आते थे क्योंकि यहाँ बहुत सस्ता और एकान्त स्थान था और उनको सब तरह की सुविधाएँ मिल जाती थीं। हम लोगों ने धीरे-धीरे उनके ठहरने की झोंपड़ियां बनायीं और वर्षों में सैकड़ों झोपड़ियाँ हो गयीं और उन लोगों को ठहराने, उनके खाने-पीने की चीजों का प्रबन्ध करने और देखभाल में ही हमारा सब समय बरबाद होने लगा।

एक बार हमें विचार हुआ, 'इतने लोग जो आते हैं, इतने वर्षों में उनमें से किसी को भी आध्यात्मिक ज्ञान या भगवान् को पाने की इच्छा नहीं हुई।' वे लोग तो केवल अपनी छुट्टियाँ मनाने आ जाते थे। वे लोग हमारे पूजा-पाठ और भगवान् के रास्ते में रुकावट दिखायी देने लगे।

हमको विचार हुआ और भगवान् का आदेश हुआ कि यह सब निरर्थक तमाशा बन्द होना चाहिये। तो एक प्रातः केवल एक दियासलाई ने चमत्कार दिखाया और सब झोंपड़ियाँ जो २०-२५ वर्षों में बनी थीं, कुछ ही मिनटों में स्वाहा हो गयीं। तब से जो लोग आते हैं उनको साफ़ कह दिया जाता है कि हमारे यहाँ रहने का कोई स्थान नहीं है। इसलिए आपको भी रात में कह दिया गया था।

ऐसा सुना तो था : आयी मौज फ़कीर की और दिया झोंपड़ा फूँक, परन्तु इस अंग्रेज़ फकीर ने सैंकड़ों ही झोपड़े फूँक दिये ताकि भगवान् के रास्ते में कोई बाधा न आये।

परन्तु आजकल........

अन्य पृथ्वीलोक

पहाड़ियों और सिन्धुओं का एक इन्द्रधनुषी मंडल,
हरे-भरे प्रान्तों में नदी नालों की झलकियाँ,
पथहीन सितारों, और रंगों का जादुई सुसंगत संसार
जो तैर रहा है छायारहित व्योम के आरपार,
धुंधले अन्धकार में जुगनुओं का नर्त्तन,
धूमिल मध्यरात्री में चन्द्रमा की रजत प्रभा चंचल,
लोहित पुष्प का अग्निल हठीला आग्रह
और स्वर्णिम हवा में पंखों की आकस्मिक चंचल झलक,
स्मृतियों में विद्युत कौंध के समान उभरते विचित्र जीवों के आकार
मोहक सुखद नीरवता में पारलौकिक अरण्यों की,
वृहद् पृष्ठभूमि में प्रशान्तमुख मंडित देवगण
लाते हुए अनन्तमयता के उत्कृष्ट ऐश्वर्यों का भंडार,
आनन्द और आश्चर्य के झिलमिलाते अवगुंठन से होकर
जागरूक दृष्टि के समक्ष उद्भूत हो रहे हैं एक के बाद एक जगत।

श्री अरविन्द

प्रगति

डॉ.अपर्णा रॉय

श्रीमाँ ने अपने प्रतीक चिह्न में कई ऐसे गुणों का विश्लेषण किया है जिन्हें आधार मानकर हम न केवल भौतिक जीवन में बल्कि आध्यात्मिक जीवन की तरफ़ भी सुगम कदमों से आगे बढ़ सकते हैं। आज जिस गुण का हमने चयन किया है वह बहुत ही महत्वपूर्ण गुण है, और वह है प्रगति। गति ही जीवन है, प्रगति यानी आगे बढ़ना, निरंतर आगे बढ़ते जाना यह एक ऐसा गुण है जो हमें निरंतर विकास की तरफ़ अग्रसर करता है । प्रगति अनिवार्य है बल्कि श्री माँ तो कहती हैं कि हमारा जो यह पार्थिव जीवन है इसका मूल उद्देश्य ही प्रगति करना है। हमारे जीवन का एकमात्र लक्ष्य है ईश्वर के निकट जाना। सच्ची प्रगति वही है जो हमें निरंतर ईश्वर के निकट ले जाती है; क्योंकि जीवन स्पष्ट रूप से ही अंधकार और प्रकाश के बीच, जीवन और मृत्यु के बीच उन्नति और पतन के बीच एक चुनाव है और श्रीमाँ कहती हैं हर व्यक्ति इस चुनाव के लिये पूरी तरह आज़ाद है। गतिशीलता श्रीअरविंद के योग का एक विशेष गुण है बल्कि कहूँ तो अनिवार्य शर्त है। गतिशील, सक्रिय रूप से गतिशील होते रहना यह एक अनिवार्य शर्त है लेकिन उसके साथ और बहुत सारी सावधानियाँ और बहुत सारे नियम स्वतः ही जुड़ जाते हैं।

गतिशील किस दिशा में? गतिशील किस तरफ़? गतिशीलता के साथ सजग होना, सचेतन होना, एक तरह से अपने लक्ष्य के प्रति स्पष्ट होना, बहुत ज़रूरी है। यहाँ हम जो बात कर रहे हैं वह खास तौर पर आंतरिक प्रगति की करेंगे। आंतरिक प्रगति तभी हो सकती है जब हम अपने मूल अस्तित्व से अपनी वास्तविक सत्ता से परिचित हो जायें और हम जानते हैं कि हमारी वास्तविक सत्ता, हम मूलतः जो हैं उसकी प्रगति के लिये ईश्वर ने हमें जो यंत्र दिये हैं वह है हमारे मन, प्राण और हमारा शरीर। भौतिक जीवन में भौतिकता की प्रगति के साथ-साथ उस प्रगति में भी उस गहराई को याद रखना, गहराई क्या है कि हमें अपने आप को प्रगतिशील बनाना है ताकि यह शरीर भी उस चेतना को महसूस करने लगे, जो परम सत्ता की चेतना है हमारे कोशाणु, हमारी मांसपेशियाँ, हमारा शरीर इतना मज़बूत हो, इतना सशक्त हो साथ ही संवेदनशील हो जो कि उसे परम सत्ता के हर संकेत को ग्रहण कर सके यानी ग्रहणशीलता किसी भी स्तर की प्रगति के लिये एक अनिवार्य गुण है। ग्रहणशीलता पर हम पहले ही बात कर चुके हैं ऐसे में भौतिक प्रगति की तरफ़ अगर हम प्रयास करते हैं तो हम देखते हैं कि वह एक अनिवार्य चीज़ तो है ही पर उसमें सजगता और सही विधि का प्रयोग बहुत ज़रूरी है। श्रीमाँ ने इसलिये सच्ची शिक्षा के बारे में बोलते समय बार-बार कहा है कि भौतिक शिक्षा, शारीरिक शिक्षा (फिज़िकल एजुकेशन), बहुत जरूरी है। यह शरीर ही वह आश्रय है, यह शरीर ही वह आधार बनता है, जो हमें आत्मिक विकास के लिये आंतरिक प्रगति के लिये सहायता करता है। दूसरे यंत्र हमारे मन और प्राण, इनके अनुशासन की बात हम कई बार कर चुके हैं लेकिन यह दोनों भी अपने आवेगों अपनी

वैचारिकता के बाद भी, बिना इस शरीर की सहायता के कुछ नहीं कर पाते, तो मन की प्रगति, प्राण की प्रगति, शरीर की प्रगति, क्या है? यह प्रगति, यह अगर हम श्रीमाँ की पुस्तक 'शिक्षा' का अध्ययन करें तो हमें बहुत सारे रास्ते, बहुत सारे संकेत मिलते हैं।

माँ का मार्गदर्शन हर तरफ़ प्राप्त है। एक शिक्षित मन, एक शिक्षित प्राण, बल्कि एक प्रशिक्षित मन और प्राण अपनी उन कमज़ोरियों से बच सकता है जिनके कारण वह इस शरीर को मार्ग से भटकाता है। शरीर को अपने दबाव में रखकर उसका दुरुपयोग करता है, उन दोनों को प्रशिक्षित करते हुए हम शरीर को उनके अत्याचारों से बचा सकते हैं, साथ ही यदि हम अपने शरीर को इतना संवेदनशील बना ले, इतना सचेतन बनाने के लिये प्रयास करते रहें कि वह स्वयं अपने आप कोई निर्णय लेने लायक बना लें, वर्तमान स्थितियों में हमारा शरीर जड़ सा है वह इन दोनों के इशारों पर नाचता है पर यह सच है कि उसमें वह क्षमता है कि वह अपनी चेतना का विकास कर सकता है। पांडिचेरी आश्रम के विद्यालय में जब भी खेलकूद की प्रतियोगिताएँ होती थी तो माँ ने कई बार यह बताया कि कैसे इन खेलों के माध्यम से इस शारीरिक शिक्षा के द्वारा हम आंतरिक विकास की ओर अग्रसर हो सकते हैं, बाह्य रूप से हमारा शरीर क्रियाशील है, हम खेल रहे हैं लेकिन साथ-साथ जहाँ शरीर की मांसपेशियां विकसित हो रही है, मज़बूत हो रही हैं, वहीं हमारा मन और हमारा प्राण भी सक्रिय है। कैसे हम उस समय उच्च चेतना के साथ परम शक्ति के आवाहन के द्वारा इसी खेल की प्रक्रिया को प्रगति का रास्ता बना लेते हैं? पुरानी विद्यालय की पत्रिकाएँ अगर हम देखें तो उसमें कई जगह माँ ने कहा है इस पूरे एथलेटिक्स कंपटीशन के समय इन शारीरिक प्रतियोगिताओं के समय मैं तुम्हारे साथ हूँ और मैं तुम तक बल, शक्ति, प्रकाश, चेतना इन्हें निरंतर भेजती रहूँगी ताकि हर कोई अपनी अपनी ग्रहण शक्ति के हिसाब से सफ़लता पा सके। हर एक का सच्चा प्रयास इतना सफ़ल हो और सभी को सफलता का शीश मुकुट प्राप्त हो। यह ऐसे कुछ शब्द माँ ने कहे थे जो स्पष्ट बताता है कि प्रतियोगिता के साथ भी जब उच्च चेतना से जुड़ा हुआ मन विचार करता है, प्राण इच्छा करता है तो वह अपनी अधिक से अधिक अच्छा करने के लिए शरीर को प्रेरित करता है। निम्न प्राणिक चेतना हमेशा अपनी जीत और दूसरों की पराजय की इच्छा करती है। जबकि उच्च चेतना से प्रभावित प्राण, अपने चैत्य से जुड़ा हुआ प्राण, वह हमेशा अपना सर्वोत्तम प्रदर्शन अपने आप को अधिक से अधिक विकसित करने के लिये करता है। एक विकसित मन एक प्रशिक्षित मन यही सोचता है कि खेल खेलते समय इस शरीर को कितनी प्रगति मिले, वह प्रगति होती है, हम कल कहाँ थे, क्या हम आज उससे बेहतर हैं? वह जीतने की इच्छा से ज्यादा इस बात का प्रयास करता है कि वह खेल के कौशल को पिछले दिन से या पिछली बार से आज बेहतर कर सके इस तरह हम धीरे-धीरे प्रगतिशील बनते हैं। श्रीमाँ ने कहा है कि मैं हमेशा अपने से बेहतर खिलाड़ियों के साथ खेलती थी मैं कभी जीतती नहीं थी पर मैंने निरंतर अपने खेल में विकास किया, प्रगति की, क्योंकि जीत हमें अहंकार में डाल देती है वह हमारी प्रगति को कई बार रोक देती है जबकि अगर अपने से अच्छे खिलाड़ी को हम स्वस्थ मानसिकता से देखें तो हम उसकी सराहना करते हैं, उसके खेल की

विशेषताओं को ग्रहण करते हैं। तो क्या हम सच्ची प्रगति नहीं करते? इसी तरह मौके-मौके पर अपनी परिस्थितियों में अगर हम सचेतन रहें कि हमारा उद्देश्य आगे बढना है, विकास करना है तो हम प्रगति करते हैं। लेकिन हम निम्न प्राणिक इच्छाओं के वशीभूत होते हैं तो हम रास्ता भटक जाते हैं, हम केवल उसके परिणाम के संबंध में सोचते रह जाते हैं और जब हमारा ध्यान अपने लक्ष्य से भटकता है, जो कि विकास है तो हम अपना सर्वोत्तम नहीं दे पाते। इसलिये प्रगति करने के लिये नीरवता, सचेतनता और उच्च चेतना के प्रति खुलना बहुत ज़रूरी है।

हमारी इस सचेतनता को थोड़ा सा सहारा मिल जाता है अगर हमारा दृष्टिकोण हमारी वैचारिकता सकारात्मक हो। अगर हम विश्वास कर लें कि कोई भी परिस्थिति हो, कैसी भी परिस्थिति हो, दुखद-सुखद कितना भी कठिन काम हो, सब कुछ मूल रूप से हमें कुछ सिखाने के लिये है और जब हमें कुछ सीखना है और इस सीखने वाली प्रवृत्ति से जब हम कूदते हैं किसी काम में तो वह हमें हमेशा सकारात्मक अनुभव देता है। अगर हम किसी काम में सफ़ल होते हैं तो हमें आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलती है अगर हम असफ़ल भी होते हैं तो हमें एक अनुभव मिलता है। उस समय हमारा दृष्टिकोण यह होना चाहिये कि हमें कहाँ पर कठिनाई हुई थी? हम कहाँ असफल रहे? हमसे कहाँ कोई कमी रह गई? और उस कमी को पहचानना उस कमी को समझने का प्रयास करना साथ ही निरंतर चरम प्रभु परम सत्ता की शक्ति का आवाहन या सहयोग और सहायता की माँग है।

अगर हम इस तरह से काम करते हैं तो हमें कोई काम दुष्कर नहीं लगता क्योंकि हम जानते हैं कि अगर असफ़ल भी रहे तो उसके मूल में भी हमें सीखना है। संभवतः हम तैयार नहीं है और यह तैयार नहीं होना एक बहुत बड़ी शिक्षा है, एक बहुत बड़ा सूत्र है, एक बहुत बड़ा फार्मूला है कि अगर हम तैयार नहीं तो हमें अभी रुकना होगा। श्रीमाँ एक जगह कहती हैं कि ऊँची-ऊँची चट्टानों के बीच में भी प्रगति करने के लिये जो चीज़ चाहिये तो वह है साहस, छलाँग, छलाँग लगाने का साहस, लेकिन इसको वह क्षैतिज़िय प्रगति कहती हैं, वह कहती हैं कि इस छलाँग को लगाने के पहले तुम्हें तैयार होना चाहिये क्योंकि एक बार तुमने ऊपर जाकर अगर छलाँग लगाई और उससे भी बड़ी छलाँग अगर लगानी है, तो तुम्हें फिर नीचे उतरना पड़ेगा, तुम वहां से छलाँग नहीं लगा सकते। इसलिये एक ही बार इस छलाँग के लिये तब प्रयास करो जब तुम अपनी पूरी तैयारी कर चुके हो, भले ही वह आध्यात्मिक जीवन में जाना ही क्यों ना हो। वह भी एक बहुत बड़ी छलाँग है। उसके पहले अपने को भौतिक रूप से, मानसिक रूप से, प्राणिक रूप से अच्छी तरह से तैयार करना चाहिये, और इस तैयारी में एक चरण के बाद दूसरा चरण निरंतर गतिशील रहना चाहिये किस तरफ़ जाना है, कब जाना है, कैसे जाना है और किसके मार्गदर्शन में जाना है। इन सब चीज़ों को यदि हम सोच कर चलते हैं तो कई बार सहायता माँगते-माँगते हम अपने अहम से बच जाते हैं। प्रगतिशीलता को अपनाने के लिये श्री माँ कहती हैं, विनय बहुत ज़रूरी है, तभी तुम माँग पाते हो। अगर सच्ची प्रगति की हमारे अंदर अभीप्सा है तो उसे याद रखना होगा।

भौतिक मानसिक और प्राणिक रूप से अपने को तैयार कर लेते हैं तो यह सहज हो जाता है कि हम अपनी आंतरिक चेतना से अपने अंतरात्मा से जुड़ जाते हैं जो सही रास्ता दिखाती है और फिर हमें पता भी नहीं चलता कि हम कब आध्यात्मिक रूप से प्रगतिशील बन जाते हैं। आध्यात्मिक प्रगति का मतलब ही यह है कि हम ईश्वर की ओर अग्रसर हो रहे हैं और उसके लिये तो जीवन में कोई भी परिस्थिति आये और हमारी तैयारी का मतलब ही यही है कि अब हमने अपने को खोल दिया है ईश्वरीय प्रेरणा के सामने, ईश्वरीय सहायता के सामने अपने आप को पूरी तरह से छोड़ दिया है। सब कुछ उसके ऊपर, फिर चाहे अच्छी परीस्थिति हो चाहे बुरी परिस्थिति हो, अच्छा परिणाम हो चाहे बुरा परिणाम हो, यह हमारे भौतिक मन के निर्णय हो सकते हैं इसलिये जो भी परिणाम होगा उसके प्रति एक सहज स्वीकृति होनी चाहिये। ऐसे में आई हुई कठिनाइयों को प्रगति का साधन बना लेना, ही सही तरीका होता है और यह प्रवृत्ति हमारे अंदर विकसित होती है। अगर हमारे अंदर ईश्वर के प्रति समर्पण होता है, अगर हम यह मानकर चलते हैं कि यह जो कठिनाई आई है यह कोई परीक्षा है इसके बाद जो कुछ सामने आ रहा है वह ईश्वर का संकेत हो सकता है।

बहुत पुरानी बात है, एक किसान जा रहा था अपने बैल को लेकर। चलते-चलते पता नहीं क्या हुआ, अचानक ठोकर लगी और उसका बैल कुएँ में गिर गया। कुआँ काफ़ी गहरा था। बैल काफ़ी डरा हुआ था, उसकी दुख भरी करुणा भरी आवाज सुनाई दे रही थी। किसान रुक तो गया, उसका बैल था इतने दिनों से बैल उसके पास था, लेकिन झाँक कर देखा, उसे लगा कि वह कुछ नहीं कर पायेगा। वह बैल को नहीं निकाल पायेगा। किसान चाहता था उसे निकालना। उसके साथ दो लोग और थे, तीनों बातें करने लगे उन्होंने सोचा अब क्या करें। थोड़ी देर बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचे वैसे भी बैल काफी बूढ़ा हो गया था, ज़्यादा दिन काम का नहीं था, अब उसके पीछे परेशान होने का कोई फ़ायदा नहीं था। तीनों ने सोचा चलो बैल की यही समाधि बना दी जाये और आसपास नजर दौड़ाई वहाँ कुछ फावड़े पड़े थे। शायद कुछ लोग काम कर रहे थे उन्होंने फावड़ा उठाया, मिट्टी खोदी और मिट्टी उठा-उठा कर कुएँ में डालने लगे। बैल बेचारा वैसे ही दुखी था उसे अपने प्राणों का संकट नजर आ रहा था ऊपर से मिट्टी की बौछार। मिट्टी गिरी उसके ऊपर, फिर मिट्टी गिरी बैल को लगा ऐसे तो मैं इसके भी नीचे दब जाऊँगा। हठात् उसको कुछ विचार आया, उसने ज़ोर से अपना सिर हिलाया और काफ़ी मिट्टी नीचे झड़ गई फिर मिट्टी गिरी उसने फिर सर हिलाया। अब तो ऐसा लगा कि उसे कोई रास्ता मिल गया है, मिट्टी गिरती जाती वह सिर हिलाता जाता मिट्टी नीचे और उसके पैरों के नीचे जमीन तैयार करने लगी, कुछ ऐसा हुआ कि अब उसको मिट्टी के गिरने का इंतजार रहता, वह उसे झटकता, मिट्टी नीचे जमा होती गई, पानी के तल से वह बैल ऊपर उठने लगा। किसान और उसके साथी मिट्टी गिरा रहे थे उनका यह सोचना था कि बैल अब वहीं समाधिस्थ हो जायेगा। लेकिन हो कुछ और रहा था।

धीरे-धीरे मिट्टी ने उस बैल के लिये ज़मीन तैयार कर दी। ऐसी ज़मीन जो धीरे-धीरे उसे ऊपर उठा रही थी । एक समय आया कि बैल कुएँ की मुंडेर तक पहुंच गया, उसने ज़ोर की छलाँग लगाई,

और वह जा और वह जा। अब उसने मुड़कर किसान की तरफ़ देखा भी नहीं। बैल, एक साधारण सा प्राणी है जिसमें कोई आध्यात्मिकता नहीं, अपनी जान बचाने का एक बल है, इच्छा शक्ति है।

आध्यात्मिक प्रगति की तरफ़ जब हम जाते हैं तो इससे बढ़कर बहुत सारी कठिनाइयाँ आती हैं। यहाँ तो सीधे-सीधे कुएँ में गिरना, स्थूल रूप से मिट्टी का आना यानी अपने ऊपर पड़ी विपत्ति तो नज़र आ रही थी। आध्यात्मिक प्रगति में जो बाधाएँ आती हैं वह बड़ी ही सूक्ष्म होती हैं, विशेष तौर पर श्रीमाँ हमें समझाती हैं, सिखाती हैं कि हमारा मन और हमारा प्राण यह दोनों ही बड़े जिद्दी होते हैं। विशेष कर मन बड़ा अहंकारमय होता है वह सब कुछ अपने लिये चाहता है उसे हर बात का श्रेय अपने ऊपर चाहिये वह सब कुछ कराता है उसकी वैचारिकता जहाँ रास्ता खोजती है वहीं उसकी वैचारिकता उसको दम्भी भी बना देती है। लोग तपस्या करते हैं, माँ कहती है मुझे ऐसे बहुत सारे लोग मिले जो बहुत प्रगति कर गये थे प्रगति के अंतिम चरण, यानी ईश्वर को पाने सत्य को जानने के अंतिम क्षण पर थे, एक कदम और आगे बढ़ाना था लेकिन अचानक उनके अंदर कहीं ना कहीं से यह अहंकार घुस जाता है ओह देखो मैंने कितना कर लिया, अरे सब कुछ ठीक हो गया और वह कहती है बस ऐसा लगता है विरोधी शक्तियों को इसी का तो इंतज़ार था। वे मुस्कुरा पड़ती हैं उसी रास्ते से वह उसके अंदर घुस जाती हैं और यह अहंकार अंदर पूरी तरह से छा जाता है। एक कदम बढ़ाना रह गया था पर वह नहीं कर पाता। कारण सिर्फ़ यही है, मन का अहंकारमय होना, वह यह स्वीकार नहीं कर पाता कि जो कुछ हो रहा है या जो कुछ किया गया वह उसने नहीं किया, अगर उन्हें यह कहा जाये, ऐसे लोगों को जो बहुत प्रगति कर चुके हैं जो बड़े तपस्वी हो गये हैं, उन्हें यह कहा जाये कि तुम्हारे अंदर की जो अभीप्सा है वह तुम्हारी नहीं है, दरअसल ईश्वर ही तुम्हारे अंदर यह अभीप्सा कर रहे हैं, उनके अंदर एक अहंकार सर उठाता है, मन विद्रोह कर देता है तो फिर ईश्वर ही करें ना, मैं नहीं करता। मन विद्रोह कर देता है। ऐसा ही प्राण के साथ होता है। मन और प्राण दोनों जब विद्रोही हो जाते हैं तो उनका चरणदास यह शरीर, यह भी साथ नहीं देता और मानव जीवन की उपलब्धि वहीं की वहीं रुक जाती है। जिसके लिये मानव जन्म होता है वह आगे नहीं बढ़ता आगे नहीं बढ़ता मतलब प्रगति अवरुद्ध हो जाती है मन के अहंकार को इसी प्रकार बढ़ते देना यानी हम विरोधी शक्ति की गिरफ्त में आ रहे हैं विरोधी शक्तियाँ इसी के इंतजार में होती हैं। इसीलिये माँ कहती हैं कि प्रगति के लिये बहुत अनिवार्य गुण है निष्कपटता यानी सच्चाई के साथ प्रयास करना। विनय, विनम्रता, अध्यवसाय, निरंतर प्रयास करना और उसके बाद सच्ची प्रगति के लिये प्रयास की सच्ची प्यास। तभी हम आगे बढ़ सकते हैं वरना प्रगति कहाँ होती है हमें पता नहीं चलता कहाँ रुकती है हम नहीं जान पाते।

प्रगतिशील बनने के लिये या प्रगति की निरंतरता को बनाये रखने का एक बहुत अच्छा साधन है कर्म, कर्म योग से बढ़कर योग पथ का दूसरा निश्चित मार्ग नहीं मिलता। अगर हम काम करते हैं तो हमारे यह तीनों यंत्र मन, प्राण और शरीर उस में सकारात्मक रूप से सक्रिय रहते हैं, उन्हें और कहीं जाने की फुर्सत नहीं मिलती बशर्ते वह अपने चैत्य से जुड़े, बशर्ते उनका दृष्टिकोण

सकारात्मक हो, बशर्ते उनके अंदर ईश्वर तक जाने की इच्छा हो ईश्वर को पाना ही उनका लक्ष्य हो तभी प्रगति का मार्ग सही दिशा में निरंतर चलता रहता है।

काम नहीं करना और मन को समझा देना कि हम तो ध्यान कर रहे हैं, हम एकाग्र होने का प्रयास कर रहे हैं, हम तो ईश्वर का चिंतन कर रहे हैं, भजन कर रहे हैं। यह कहीं ना कहीं तमस का द्वार खोल देता है। सिर्फ ध्यान करने से ध्यान के अंदर भी कहीं न कहीं यह तमस का अहंकार प्रवेश कर जाता है और अहंकार जहाँ है वहाँ पर कहाँ ईश्वर! अहम होने की जो यह भावना है, अहंकार की जो यह भावना है, अपने अस्तित्व की जो यह ज़िद है, वह बड़ी ही हानिकारक है, जो बड़े-बड़े तपस्वियों को भटका देता है, वह मानना ही नहीं चाहते कि वह खुद नहीं कर रहे, उनका सारा उत्साह खत्म हो जाता है। अगर उनके अस्तित्व को पुष्टि न मिले, अगर अपने कर्म का श्रेय उन्हें न मिले, और जबकि आध्यात्मिक प्रगति की माँग है समर्पण, संपूर्ण समर्पण, काम भी ईश्वर का, काम का किया जाना भी ईश्वर के द्वारा और काम का लक्ष्य भी ईश्वर को पाना, सच्ची प्रगति तो यही है और इसीलिये वह कहती हैं कि यह जो पार्थिव जीवन है वह एक सुयोग है प्रगति करने का। सच्ची प्रगति जो ईश्वर के निकट ले जाती हैं अपने निम्न चेतना की, निम्न प्राणिक, छोटी-मोटी तुच्छ इच्छाओं की पूर्ति करते रहने। कितनी बड़ी बेवकूफ़ी है, कितनी बड़ी मूर्खता है क्योंकि जीवन बहुत छोटा है। इस लघु जीवन में प्रगति इतनी बड़ी है जो हमें करनी है जब हम काम करते रहते हैं काम की पूर्णता को देखते हैं उसकी परफ़ेक्शन को निहारते हैं, उससे हमें पता चलता है कि हम प्रगति कर रहे हैं या नहीं क्योंकि कई बार हर व्यक्ति सूक्ष्म स्तरीय प्रगति को नहीं पहचान पाता। हर एक का अपना स्तर होता है तो उसको कहीं ना कहीं यह आश्वासन मिलता रहे कि वह प्रगति कर रहा है इससे उसका प्रोत्साहन बढ़ता है इसलिये ज़रूरी होता है एक सीमा तक, माँ ने प्रतियोगिताओं को भी इसीलिये स्वीकार लिया था क्योंकि प्रतियोगिताएँ कहीं ना कहीं उत्तेजना देती हैं और इस उत्तेजना से बल मिलता है जिसके कारण अधिक से अधिक प्रयास करने की प्रेरणा आती है फलतः प्रगति अधिकतम होने लगती है। पर धीरे-धीरे जब हम प्रगति के सूक्ष्म स्तर में उतरते हैं जब गहराई में जाते हैं आंतरिक प्रगति की ओर बढ़ने लगते हैं तो यही उत्साह हमें नीरवता की तरफ ले जाना चाहिये और नीरवता के अंदर ही ईश्वरीय प्रेरणा होती है।

यह सहायता होती है जिसके कारण हम प्रगति करते हैं प्रगति करना प्रगति की निरंतरता को बनाये रखना उसके अंदर उच्च चेतना का आवाहन करना उसके प्रति समर्पित होना और अपने लक्ष्य पर दृष्टि गड़ाए रखना कि हमारी सच्ची प्रगति ईश्वर को पाना है, ईश्वर के निकट जाना है, अपने आप को दिव्य बनाना है कम से कम श्री अरविंद का योग पथ श्रीमाँ का मार्गदर्शन हमको उसी रास्ते पर ले जायेगा जहाँ पर उन्होंने अपना कार्य निश्चित किया है। हमें उसे अतिमानस के लिये अपने को तैयार करना है। भौतिक, मानसिक, प्राणिक हर स्तर पर कहीं ना कहीं एकाग्रता ध्यान और नीरवता को पाने का अभ्यास करते हुये हमें अंदर जाकर अपने चैत्य को पाना है, उससे जुड़े रहना है, उसका शासन अपने मन, प्राण और शरीर इन तीनों प्रमुख यंत्रों पर स्वीकार

करना है या इन तीनों को बाध्य करना है कि वह चैत्य की अधीनता को स्वीकार कर ले और इस प्रकार वे ईश्वर के एक सच्चे यंत्र बने जो इस पार्थिव जीवन के मूल लक्ष्य की तरफ़ हमको अग्रसर कर सके। अपनी प्रगति के प्रति निरंतर प्रयत्नशील रहे एक समय भी ऐसा ना हो जब हम थक जाएँ क्योंकि श्रीमाँ कहती हैं तुम्हारा वह वर्ष जब तुमने कोई प्रगति नहीं की, वही तुम्हें बूढ़ा बनाता है। बुढ़ापा और क्या है, सिवाय इसके कि जो हमें एहसास करा दे अपनी असमर्थता का, अहसास करा दे निर्बलता का, विवशता का। भौतिक शरीर की अपनी सीमाओं को भी सहज रूप से स्वीकारना उसके कोषाणुओं को निरंतर प्रगति की तरफ़ चेतना की तरफ़ सजग बनाते रहने का प्रयास करना, यही तो प्रगति है। हर प्रगति को अपनायें, हर प्रगति के लिये प्रयास करें, सचेतन प्रयास करें लेकिन लक्ष्य यही रहना चाहिये कि यह गति उसे प्रगति की ओर जाये जो हमें ईश्वर के निकट ले जाये।

प्रगति :

हर क्षण मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए
जो कुछ तुम हो
और जो कुछ तुम्हारे पास है उसे छोड़ने के लिए तैयार रहना।

भारतीय संस्कृति के एक बुद्धिवादी आलोचक – 2

श्रीअरविन्द

(पिछले अंक में –
जिन दिनों स्टोइक (Stoic) संप्रदाय और एपीक्यूरस (Epicurus) के मत का प्राधान्य था उन दिनों इसने कुछ प्रभुत्व अवश्य प्राप्त किया था पर तब भी केवल अत्यंत सुसंस्कृत व्यक्तियों के बीच ही; वर्तमान समय में भी उस प्रकार की एक अभिनव प्रवृत्ति हमें दृष्टिगोचर हो रही है। नित्शे का प्रभाव पड़ा है, उधर फ्रांस में भी कई फ्रेंच विचारकों ने, जेम्स और बर्गसों के दर्शनों ने कुछ अंश में जनता की रुचि को आकृष्ट किया है; किंतु एशिया के दर्शन की अमोघ शक्ति की तुलना में वह सब कोरे शून्य के समान है। औसत यूरोपवासी अपने मार्गदर्शक विचार दार्शनिक नहीं बल्कि प्रत्यक्षवादी एवं व्यावहारिक बुद्धि से ही आहरण करता है। वह मि. आर्चर की तरह दर्शन की नितांत अवहेलना तो नहीं करता, परंतु वह इसे एक "मनुष्यनिर्मित भ्रम" न सही, पर एक प्रकार की अपेक्षाकृत दूर की, धुंधली-सी और निष्प्रभाव प्रवृत्ति अवश्य समझता है।)

इसके विपरीत, भारतीय मन की मान्यता यह है कि ऋषि, यानि आध्यात्मिक सत्य का चिंतक एवम द्रष्टा धार्मिक और नैतिक ही नहीं बल्कि व्यावहारिक जीवन का भी सर्वोत्तम मार्गदर्शक होता है। यद्यपि जो कोई भी व्यक्ति उसे अपने जीवन में सहायता पहुँचाने वाला आध्यात्मिक सत्य प्रदान कर सके या धर्म, नीति, समाज और यहाँ तक कि राजनीति पर प्रभाव डालने की रचनात्मक परिकल्पना एवं प्रेरणा दे सके उसे 'ऋषि' नाम से अभिहित करने के लिये वह आज भी बहुत उद्यत रहता है।

कारण, भारतवासी को यह विश्वास है कि अंतिम सत्य आत्मा के ही सत्य हैं और आत्मा के सत्य हमारी सत्ता के अत्यंत आधारभूत एवं अत्यंत कार्यक्षम सत्य हैं जो आंतरिक जीवन का ओजस्वी रूप में निर्माण कर सकते हैं तथा बाह्य जीवन का हितकारक सुधार कर सकते हैं। यूरोपवासी की दृष्टि में अंतिम सत्य प्रायः ही विचारणात्मक बुद्धि, विशुद्ध तर्कबुद्धि के सत्य होते हैं, परंतु वे चाहे बौद्धिक हों या आध्यात्मिक, वे मन, प्राण और शरीर के साधारण कार्य से परे के स्तर से ही संबंध रखते हैं जब कि उनके "मूल्यों की परीक्षा" करनेवाली कोई भी दैनंदिन कसौटियाँ केवल मन, प्राण और शरीर के स्तर में ही होती हैं। ये परीक्षाएँ बाह्य तथ्य के जीवंत-जाग्रत् अनुभव और प्रत्यक्षवादी एवं व्यावहारिक बुद्धि के ही द्वारा की जा सकती हैं।

मि. आर्चर और उनके ढंग के अन्य विचारकों से इन चीजों के जानने की आशा नहीं की जा सकती; ये तो तथ्यों और विचारों के उस छोटे-से संकुचित क्षेत्र से परे की चीजें हैं जो कि उनकी दृष्टि में ज्ञान का संपूर्ण क्षेत्र है। परंतु यदि मि. आर्चर इन्हें जान भी लें तो भी इससे उनकी दृष्टि में कोई अंतर नहीं पड़ेगा; वे इनके विचार तक को घृणायुक्त अधीरता के साथ त्याग देंगे, पर कोई अज्ञात सत्य भी संभव हो सकता है इस बात की किसी प्रकार की जांच-पड़ताल करके वे अपने महान् युक्तिवादीय बड़प्पन पर कलंक नहीं लगने देंगे। पर गंभीरतम प्रमाण-योग्य आध्यात्मिक सत्य, सुनिर्धार्य आध्यात्मिक मूल्य? इनकी तो परिकल्पना ही ऐसे मन के लिये एक विजातीय वस्तु है और वह इसे एक बे-सिरपैर की बात मालूम होती है। एक क्षमताशाली धर्म की, "मैं इसलिये विश्वास करता हूँ कि तर्कतः यह असंभव है"- ऐसे भाव से स्वीकार करने योग्य धर्म की बात तो

इसकी समझ में आ सकती है, चाहे वह उसका निराकरण ही क्यों न कर डाले; परंतु धर्म का गंभीरातम रहस्य, दार्शनिक चिंतन का उच्चतम सत्य, मनोवैज्ञानिक अनुभव की चरम-परम खोज, आत्म-अन्वेषण और आत्म-विश्लेषण का व्यवस्थित और विधिवद्ध परीक्षण, आत्म-पूर्णता की एक रचनात्मक आभ्यंतरिक संभावना, इन सब का एक ही परिणाम पर पहुँचना, एक-दूसरे के निष्कर्षों से सहमत होना, आत्मा और बुद्धि तथा संपूर्ण मनोवैज्ञानिक प्रकृति और इसकी गंभीरतम आवश्यकताओं में सामंजस्य स्थापित करना, भारतीय संस्कृति की इस महान् प्राचीन अटल खोज और विजय से पश्चिम का सामान्य प्रत्यक्षवादी मन चकरा जाता और खीज उठता है। जिस ज्ञान को पश्चिम अंततक केवल टटोलता ही रहा पर कभी पा नहीं सका, उसे भारतीय संस्कृति में पाकर यह घबड़ा जाता है। क्षुब्ध, विमूढ़ और घृणाकुल होकर यह अपनी हीनतर विभक्त संस्कृति की अपेक्षा ऐसे सामंजस्य की उत्कृष्टता को मानने से इंकार कर देता है। क्योंकि, यह केवल एक ऐसे धार्मिक अनुसंधान और अनुभव का अभ्यस्त है जो विज्ञान और दर्शन से शत्रुता रखता है अथवा जो तर्कविरुद्ध विश्वास और विक्षुब्ध या स्व-विश्वासी संदेहवाद के बीच झूलता रहता है। यूरोप में दर्शन कभी-कभी धर्म का नौकर बनकर रहा है, भाई नहीं; किंतु प्रायः ही उसने शत्रुतापूर्वक या घृणा के साथ अलग होकर धार्मिक विश्ववास से मुंह फेर लिया है। धर्म और विज्ञान का युद्ध यूरोपीय संस्कृति की प्रायः प्रमुख घटना रही है। यहांतक कि दर्शन और विज्ञान भी कभी एकमत नहीं हो सके; वे भी झगड़ते रहे हैं और एक-दूसरे से अलग रहे हैं। ये शक्तियां यरोप में आज भी एक साथ विद्यमान हैं, पर ये एक सुखी परिवार के रूप में निवास नहीं करती; गृहयुद्ध ही इनका स्वाभाविक वातावरण बना हुआ है।

कुछ आश्चर्य नहीं यदि प्रत्यक्षवादी विचारक, जिसे यह वस्तुस्थिति स्वाभाविक प्रतीत होती है, चिंतन और ज्ञान की एक ऐसी प्रणाली से मुँह मोड़ ले जिसके अंदर दर्शन और धर्म में एक प्रकार का सामंजस्य, एकमतता और एकता विद्यमान है और एक क्रमबद्ध सुपरीक्षित मनोवैज्ञानिक अनुभव है। यह महज ही ज्ञान के इस विजातीय रूप की चुनौती से बचने के लिये प्रेरित होता है और इस उद्देश्य से वह तुरंत ही भारतीय मनोविज्ञान, धर्म और दर्शन का यह कहकर खंडन कर डालता है कि भारतीय मनोविज्ञान आत्म-सम्मोहकारी भ्रांतियों का एक जंगल है, भारतीय धर्म तर्कविरोधी अंध-विश्वासोंकी आत्यंतिक वृद्धि है, भारतीय दर्शन निःसार कल्पना का एक सुदूर स्वप्नलोक है।

मि. आर्चर ने भारतीय सृष्टि विज्ञान और शरीर-क्रिया-विज्ञान के साथ-साथ भारतीय मनोविज्ञान का भी यों कहकर खंडन कर डाला है कि यह एक निराधार वर्गीकरण और चतुरतापूर्ण अनुमान है, पर यह और कुछ भी हो, एक ऐसा वर्गीकरण एवं अनुमान तो नहीं ही है क्योंकि यह कठोरतापूर्वक अनुभव पर आधारित है; इसके विपरीत, आज जो भी नयी से नयी मनोवैज्ञानिक खोजें हो रही हैं वे सभी अधिकाधिक इसका समर्थन कर रही हैं। परंतु यह सब होने पर भी प्रत्यक्षवादी मन दृढ़ साहस दिखा सकता है : क्योंकि उसका प्रभुत्व अभी भी प्रबल है, आज भी वह बुद्धिवाद का कट्टर अनुयायी होने का दावा करता है और प्रभुत्व स्थापित करने का अधिकार

पाने योग्य सम्मान अभी तक उसे प्राप्त है; अतएव पहले अनेक धाराओं को उमड़ना और एक साथ मिल जान होगा और तब कहीं वह उनके महाप्रवाह में बह जायेगा और एकीकारक विचार की ज्वार तीव्र वेग के साथ मानवता को आत्मा के गुप्त तटों की ओर ले जायेगी।

भारतीय सभ्यता को मुख्य रूप से उसकी सहस्रों वर्षों की संस्कृति और महानता के द्वारा परखना होगा न कि उसकी थोड़ी सी सदियों की अज्ञानता और दुर्बलता के द्वारा। किसी संस्कृति की परीक्षा तीन कसौटियों से करनी चाहिये,

प्रथम, उसकी मूल भावना से,

दूसरे, उसकी सर्वोत्तम प्राप्तियों से और

अंत में, उसकी अपेक्षाकृत दीर्घजीवन और नवीकरण की शक्ति से एवं अपने-आपको जाति की चिरंतन आवश्यकताओं के नये रूपों को अनुकूल बनाने के सामर्थ्य से।

अल्पकालीन अवनति के युग की दरिद्रता, विश्रृंखलता एवं अव्यवस्था में, एक विद्वेष पूर्ण साक्षी की दृष्टि उस रक्षक शिवमय आत्मा को देखने या पहचानने से इन्कार करती है जो इस सभ्यता को आजतक जीवित रखे हुए है और इसके शाश्वत आदर्श की महत्ता के ओजस्वी और सजीव पुनरुदय की आशा बंधाता है। इसको दबाये जाने पर उचकने की सुदृढ़ और नमनीय शक्ति, आवश्यकतानुसार अपने को गढ़ लेने की इसकी पुरानी अपरिमेय शक्ति फिर से अपने कार्य में लग गयी है; यहाँ तक कि यह पहले की तरह केवल अपना बचाव ही नहीं कर रही है बल्कि साहसपूर्वक आक्रमण भी कर रही है। भविष्य केवल बचे रहने की ही नहीं बल्कि विजय और प्रभुत्व प्राप्त करने की आशा भी इससे रखता है। परंतु हमारा आलोचक भारतीय सभ्यता की आत्मा की उस उच्चाशयता एवं महानता से इंकार करता है।

इसके विपरीत, कहा जाता है कि वह समस्त बुद्धिसंगत और ओजपूर्ण आध्यात्मिकता के अंकुरों का नाश करने में सफल हुआ है। स्पष्टतः ही, मि. आर्चर 'आध्यात्मिकता' शब्द को अपना निजी अर्थ, एक अनोखा, मनोरंजक तथा अत्यंत पश्चिमीय अर्थ, देते हैं। अब तक आध्यात्मिकता का अर्थ रहा है - मन और प्राण से महान् किसी वस्तु को अंगीकार करना, अपनी सामान्य मानसिक और प्राणिक प्रकृति के परे विद्यमान एक शुद्ध, महान् और दिव्य चेतना के लिये अभीप्सा करना, मनुष्य की अंतरात्मा का हमारे निम्न भागों की क्षुद्रता और बंधनग्रस्तता में से निकलकर उसके अंदर छुपी हुई एक महत्तर वस्तु की ओर उमड़ना और ऊपर उठना। यही कम-से-कम वह विचार वह अनुभव है जो भारतीय विचार धारा का सारमर्म है।

हमें बताया जाता है कि जो वेदना और विचारधारा होमर के आदर्श मस्तिष्क को कुरेदती और कुतरती है उसी में युक्तिसंगत और ओजपूर्ण आध्यात्मिकता निहित है। अज्ञान और दुःख पर विजय पानेवाले बुद्ध की शांति और करुणा, 'सनातन' के साथ योग में समाहित और विचार-शक्ति की जिज्ञासाओं से ऊपर, परम ज्योति के साथ तादात्म्य में उठे हुए मनीषी की ध्यान-धारणा, शुद्ध अंतःकरण के प्रेम के द्वारा विश्व से परे और विश्व में फैले हुए 'प्रेम' के साथ एकीभूत संत का

आनंदातिरेक, अहंकारमय कामना और वासना-से ऊपर उठकर दिव्य विश्वव्यापी 'संकल्प-शक्ति' की निर्व्यक्तिकता में पहुँचे हुए कर्मयोगी की संकल्प-शक्ति, -- ये चीजें, जिन्हें भारत ने सर्वोच्च मूल्य प्रदान किया है और जो उसकी महान्-से-महान् आत्माओं का परम ध्येय रही हैं, युक्तिसंगत और ओजपूर्ण नहीं है। हम कह सकते हैं कि यह आध्यात्मिकता के विषय में एक अत्यंत पश्चिमी तथा आधुनिक विचार है। क्या हम यों कहें कि अब होमर, शेक्सपियर, राफेल (Raphael), स्पिनोजा, कांट, शार्लमाइन, अब्राहम लिंकन, लेनिन और मुसोलिनी केवल महान् कवियों और कलाकारों या विचार और कर्म के महारथियों के रूप में ही नहीं बल्कि आध्यात्मिकता के हमारे यथार्थ वीरों और आदर्श-पुरुषों के रूप में हमारे सामने आयेंगे, बुद्ध भी नहीं, ईसा, चैतन्य, सेंट फ्रांसिस और रामकृष्ण भी नहीं। ये या तो अर्ध-बर्बर पूर्वीय लोग हैं अथवा पूर्वीय धर्म के स्त्रैण उन्माद से प्रभावित व्यक्ति हैं। भारतीय मानस पर इस बात का वैसा ही प्रभाव पड़ता है जैसा कि एक सुसंस्कृत बुद्धिशाली पुरुष पर उस समय पडता है जब उससे यह कहा जाता है कि अच्छी रसोई बनाना, अच्छे ढंग से कपड़े पहनना, अच्छा मकान बनाना, अच्छी तरह पढ़ाना आदि सच्चा सौंदर्य है तथा इनका अनुशीलन ही यथार्थ, विवेक युक्त एवं ओजपूर्ण सौंदर्य-भावना है, और साहित्य, स्थापत्य, मूर्तिविद्या एवं चित्रकला तो बस व्यर्थ में कागज काला करना, पागलों की तरह पत्थर खुरचना और निरर्थक कपड़े पर रंग पोतना है; तब तो वोबान (Vauban), पेस्तोलोत्सी (Pestolozzi), डा. पार (Dr. Parr), वाताल (Vatal) और बो ब्रूमेल (Beau Brummel) ही कलात्मक सृजन के सच्चे नायक हैं न कि दा विंसी (Da Vinci), आंजेलो (Angelo), सोफोक्लिज (Sophocles), दांते (Dante), शेक्सपियर या रोदें (Rondin)। इस बीच हम दृष्टिकोणों के विरोध पर गौर करें और पश्चिम और भारत के विभेद का आंतरिक कारण समझने की कोशिश करें।

भारतीय दर्शन के क्रियात्मक मूल्य के विरुद्ध अभियोग लगाने का कारण यह है कि यह जीवन प्रकृति और प्राणगत इच्छाशक्ति से तथा मनुष्य के ऐहलौकिक पुरुषार्थ से मुंह मोड़ता है। यह जीवन को कुछ भी मूल्य नहीं प्रदान करता; यह प्रकृति के अध्ययन की ओर नहीं बल्कि उससे दूर ले जाता है। यह समस्त इच्छा प्रधान व्यक्तित्व का उन्मूलन करता है; यह जगत के मिथ्यात्व, ऐहिक लाभों के प्रति अनासक्ति, अतीत और अनागत जीवनों की अनंत श्रृंखला की तुलना में वर्तमान जीवन की तुच्छता की शिक्षा देता है। यह एक दुर्बलताकारी तत्त्वज्ञान है जो निराशावाद, वैराग्य, कर्म और पुनर्जन्म की मिथ्या धारणाओं के साथ उलझा हुआ है, -- ये सभी विचार परम आध्यात्मिक वस्तु, संकल्प प्रधान व्यक्तित्व के लिये घातक हैं। यह भारतीय संस्कृति और दर्शन के विषय में भद्दे ढंग से अतिरंजित एवं मिथ्याभूत धारणा है जो भारतीय मन के केवल एक ही पक्ष पर बल देते हुए उसे उदासी-भरे और अंधकारमय रंग में प्रस्तुत करने से पैदा होती है और इस धारणा को जिस ढंग से प्रस्तुत किया गया है वह मेरी समझ में मि.आर्चर ने यथार्थवाद के आधुनिक गुरुओं से सीखा है।

यह कहना कि भारतीय दर्शन ने लोगों को प्रकृति के अध्ययन से विमुख किया है, सफ़ेद

झूठ है और भारतीय सभ्यता के भव्य इतिहास की अवहेलना है। यदि यहाँ प्रकृति का अर्थ भौतिक प्रकृति हो तो स्पष्ट सत्य यह है कि आधुनिक युग के पूर्व किसी भी राष्ट्र ने प्राचीन भारत के समान दूर तक और वैसी अपूर्व सफलता के साथ वैज्ञानिक खोज नहीं की। यह एक ऐसा सत्य है जो इतिहास के पृष्ठों पर अंकित है और जिसे सभी लोग पढ़ सकते हैं। भारत के विख्यात विद्वानों और वैज्ञानिकों ने इसे अत्यंत ओजस्वी रूप में और अपरिमित विस्तार के साथ प्रतिपादित किया है, परंतु यूरोप के जिन मनीषियों ने इस विषय में तुलनात्मक अध्ययन करने का कष्ट किया था वे भी इसे जानते और मानते थे। इतना ही नहीं कि गणित, ज्योतिष, रसायन, चिकित्साशास्त्र और शल्यतंत्र में, प्राचीन काल में भौतिक ज्ञान की जितनी भी शाखाओं का अनुशीलन किया जाता था उन सभी में भारत अग्रगण्य था, अपितु यूनानियों ही के समान वह भी अरबवासियों का गुरु था जिनसे यूरोप ने वैज्ञानिक जिज्ञासा की अपनी खोयी हुई आदत पुनः प्राप्त की और वह आधार उपलब्ध किया जिस के सहारे आधुनिक विज्ञान अपने मार्गपर अग्रसर हुआ। अनेक दिशाओं में भारत को ही खोज का प्रथम श्रेय प्राप्त हुआ, - इसके अनेकानेक दृष्टांतों में से हम यहाँ केवल दो ज्वलंत दृष्टांत लेते हैं, एक तो है गणित में दशमलव-पद्धति और दूसरा यह ज्ञान कि ज्योतिष में पृथ्वी एक गतिशील पिंड है, - गैलिलियो से सदियों पहले एक भारतीय ज्योतिषी ने कहा था 'चला पृथ्वी स्थिरा भाति' अर्थात् पृथ्वी गतिशील है और वह केवल देखने में ही स्थिर प्रतीत होती है। यह महान् विकास एक ऐसे राष्ट्र में, जिसके विद्वान और विचारक दार्शनिक प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर प्रकृति के अध्ययन से परांग्मुख हो जाते हों, कदाजित ही संभव हो पाता।

(भारतीय संस्कृति के आधार – भारतीय संस्कृति पर एक युक्तिवादी आलोचक - अध्याय 1,2,3 से संकलित)

(क्रमशः)

सावित्री (पर्व १ सर्ग ४)
रहस्यमय ज्ञान

राजा अश्वपति की साधना ने उसको एक ऐसे शिखर पर खड़ा कर दिया था जहां से दूसरे अधिक उन्नत शिखरों के दर्शन होते थे। सर्वोच्च अनंत के पास ले जानेवाली यात्रा में ये तो मात्र आरंभ की उषाएं थीं। देदीप्यमान दिवाकर दर्शन देने में अभी तक विलंब करता था। बृहद् ब्रह्म की और सुदूर की सनातन ज्योति की खोज करती मानव आत्मा का यह तो केवल प्रास्ताविक आरोहण था।

हम मृत्युबद्ध क्षुद्रता मात्र नहीं हैं। हमारे ऊर्ध्व के स्वरूपों में अमर ऐसी विस्मृत विशालताएँ हमारी अन्वेषणा की बाट जोह रही हैं। हमारी प्रकृति की उत्तुंगताएँ स्वर्गों की पड़ोसिन हैं। आत्मा के अपार विस्तार और अगाध गहराइयाँ हमारी ही हैं। इनके साथ हमारा अंतरंग संबंध है। अंतलीन होकर जब हम प्रार्थना करते हैं तब हमारी प्रार्थना की हल्की मंद आवाज लुप्त हुई इन ज्योतिर्मयी अनंतताओं को बुलाती हैं। कभी-कभी हमारे पार्थिव अज्ञान के बीच का परदा खिसक जाता है तब थोड़े समय के लिये हम इन दिव्यताओं में चमत्कारी रीति से मुक्त होकर प्रवेश करते हैं।

आत्मा के उन्मीलन की प्रक्रिया में कभी-कभी अलौकिक धामों की रहस्यमयता आविर्भाव पाने के लिये किसी एक मानुषी आधार को पसंद करती है, दिव्य जीवन के उच्छ्वास के साथ कोई एक सान्निध्य प्रकट होता है, कोई एक मार्गदर्शक ज्योति जाग उठती है। कई बार यह संगमरमर की प्रतिमा जैसे बने हुए शरीर में शांति की स्थिरता का दर्शन कराती है, कई बार यह एक आविर्भावक भभकती शक्ति-स्वरूप में प्रकट होती है और सारी प्रकृति को प्रकंपमान बना देती है। तो कई बार हमारा अपना ही परमोच्च पुरुषभाव प्रादुर्भाव पाता है, और हम अपनी आत्मा के अधिदेवता की आराधना में प्रवृत्त हो जाते हैं। हमारा अहंभाव पीछे सरक कर क्षीण हो जाता है और हम प्रकृति और प्रभु के साथ एकरूप बन जाते हैं।

साधना की सरणी पर आगे बढ़ते हुए शाश्वत के शिव लक्षण हमारे लक्ष्य में आते रहते हैं, मन की पहुँच के पार का सत्य हमारे प्रत्यक्ष अनुभव में आता है। इन कानों से कभी न सुना हो ऐसा सुनने में आता है, इंद्रियों ने जिसका कभी भी संवेदन न किया हो उसका संवेदन होता है, सामान्य हृदय जिससे डर जाते हैं और जिसका बहिष्कार करने को प्रेरित होते हैं ऐसा कोई एक हमारे प्रेम का प्रेमपात्र बनता है। इस अवस्था में मन प्रशांति में प्रलीन हो जाता है और इस महाशांति में अंतरात्मा की गहनताओं में से आती हुई आवाज हमें संबोधित करती है। एक भागवत सान्निध्य हमारी चैत्यात्मा का संचालन करता है। जिसको हम देख नहीं सकते ऐसा कोई एक अपरिचित

हमारे अंदर कार्य करने लगता है और भावी भागवत आविर्भाव होने ही वाला है ऐसी प्रतीति के साथ यह शतकों की परवाह किये बिना धन्य क्षण को प्रतीक्षा में रहता है।

यह जो है वह है हमारा आदि मूल, हमारी गुरुचाबी, हमारे मस्तक पर विराजमान मौन, अंतरात्मा की आवाज़, हृदय में रमती प्राणवन्ती प्रतिमा, जिसके लिये हमारे प्रयत्न होते हैं वह परम सत्यता, हमारे अस्तित्व का परमोदार अर्थ और उद्देश्य। प्रभु के मधुकोषों में भरे हुए मधु का यह महानिधि है, काली कफ़नी में रहती हुई भभकती महादीप्ति है। यह है प्रभु के पावक की महिमा, विश्व के आनंद का उत्स, मृत्यु की कनटोपी पहननेवाली अमरता, हमारी अजात दिव्यता की आकृति। क्षणभंगुर वस्तुओं का सनातन बीज जहाँ सोया हुआ है वहाँ गहराइयों में रहकर हमारे भास्वंत भावी की यह रखवाली करती है। यह अवर्णनीय गुप्त वस्तुओं को प्रत्यक्ष देखती है, अज्ञात जगत के लक्ष्य का और यात्रा पर निकले हुए वर्षों के हार्द का (रहस्य का) इसे ज्ञान है।

परंतु यह सब तो अब परदे के पीछे आया हुआ है। इसको देखने और जानने के लिये अंतःस्फुरणा की, अंतर्मुखता की और आत्मदृष्टि की आवश्यकता है। बाह्य चेतना की बाह्य दृष्टि को यह सब लक्ष्यहीन 'यदृच्छा' और अवश्यंभाविता जैसा लगता है। इसके मत से तो पृथ्वी एक जड़यंत्र है जिसमें मृत्यु के जाल में फंसे हुए हम जैसे-तैसे जीवित रहते हैं। अज्ञात में से ज्ञात के प्रति हमारी गति चल रही है। अंधकार में से एक अभीप्सा उठती है और वह विलुप्त हुई अमर ज्योति के प्रति आरोहण करती है। पृथ्वीदेवी काल की मरुस्थली में पसीना बहाती है, परंतु काल में अमरात्मा की समस्या हल नहीं कर सकती। यह अपने निर्निद्र हृदय में बेचैन बना देनेवाली प्रेरणा को पोसती रहती है। अपनी आत्मा के युद्ध में, यातना में यह अपनी विकृत प्रकृति की पूर्णता को ढूँढ़ती है। अपने पत्थर में और पंक में भी प्रभु के उच्छ्वास आये ऐसी यह इच्छा रखती है। परम प्रेम को और सत्य ज्योति को यह अपनी मिट्टी में मूर्तिमन्त बनाना मांगती है। भ्रममुक्त मन, अंतरात्मा को प्रकट करनेवाला संकल्प, ठुकराया न जाये ऐसा बल, दुःख की छाया से मुक्त आनंद अपना जन्मसिद्ध अधिकार है ऐसा इसको भान है और इन सबको यह अपना बना लेने की अभीप्सा का सेवन करती है।

पृथ्वी की सपंख कपोल कल्पनाएँ स्वर्ग में सत्य के अश्व बनी होती हैं। इस लोक में जो अशक्य जैसा जान पड़ता है वह भविष्य में सिद्ध होनेवाली वस्तुओं का प्रभु का इंगित है। यहाँ जो कुछ बनता है वह एक अगम्य योजना का अंगरूप है, परंतु एकमात्र प्रभु ही उस सबको अपने हृदय में जानता है।

अज्ञान के नियमों द्वारा ज्ञात वस्तु का सर्जन होता है। हमारी दृष्टि बाह्य दृश्यों पर रमती होती है। हमारा मन हमारी चैत्यात्मा को बंदी बनाये रखता है। हम अपने कर्मों के गुलाम हैं। प्रज्ञान के प्रभाकर को प्राप्ति के लिये आवश्यक मुक्ति से हमारी दृष्टि वंचित है। मानव है मर्यादाओं में रखा हुआ जीव। अपना अज्ञानवश जीवन किसलिये है इसका इसको ज्ञान नहीं है। अपने भव्य भावी का इसको भान नहीं है। अमर शृंगों के अधिवासी अमरदेव हो केवल दिक्काल के पार से देखते हैं

और काल के मार्ग पर की गति को मोड़ सकते हैं।

विश्व के स्रष्टा विश्व के पार ऊर्ध्व में अवस्थित हैं। दृश्यमान प्रपंच में वे उसकी गहराई में आये हुए गूढ़ मूल को देखते हैं। बाहर की धोखेबाज क्रीड़ा को वे गिनती में नहीं लेते। क्षण के चलायमान कदमों की तरफ वे नहीं घूमते, परंतु मानव भूमिका में न सुने जानेवाले निर्माण के धीर कदमों की तरफ ये कान लगाये रखते हैं। यहाँ मचे हुए घमासान संग्राम के बीच में पृथ्वी जिसके लिये पुकार कर रही है उस परमानंद की वे तलाश रखते हैं।

क्रमगति से छद्मवेशी परमात्मा अपने सिंहासन पर आरूढ़ होगा। बढ़ते जाते अंधकार में चोर की तरह यह चुपचाप अपने धाम में प्रवेश करता है। स्पष्ट न सुनी जानेवाली आवाज आयेगी और आत्मा इसके आधीन हो जायेगी। सौन्दर्य और माधुर्य जीवन के बंद द्वारों को खोलेंगे, सत्यज्योति सृष्टि के ऊपर अचिंतित छापा मारेगी, प्रभु की तस्करता हृदय को महासुख का अनुभव करने के लिये मजबूर करेगी, पृथ्वी अचानक प्रभुमय बन जायेगी। जड़ तत्त्व में आत्मा का प्रकाश प्रदीप्त किया जायेगा, पिंड में परमपावन जन्म होगा, रात्रि तारों का स्तोत्रगान सुनेगी, दिवस सुखपूर्वक यात्रा करेंगे, हमारा संकल्प सनातन की शक्ति का संकल्प बन जायेगा, और विचार अध्यात्म सूर्य की विभा का वैभव धारण करेगा। अभी तक जो किसी की समझ में नहीं आया है उसको कई लोग प्रत्यक्ष करेंगे, प्राज्ञजन बाते करते और सोते ही रहेंगे, उस बीच में विभु वर्द्धमान बनेगा, क्योंकि आगामी की अंतिम घड़ी तक मानव उसे पहचानेगा नहीं और कार्य पूरा न हो जाये तब तक कोई मानेगा नहीं।

यहाँ जिसे अपना ज्ञान नहीं है ऐसी एक चेतना अंधकार और ज्योति के बीच के अंतराल में उलझी हुई है। भूत और भविष्य रहित एक वर्तमान शून्याकार में घूमा करता है, सृष्टि अर्थ रहित बन जाती है, एक निरर्थक चमत्कार की चमक जैसी यह दिखती है। जीवन और मृत्यु में होकर काल के किनार पर यह दौड़ती रहती है। परंतु जब इसका परम तेजस्वी कार्य चलता है तब यह रात्रि के हृदय में भभक उठती है। अब जो वस्तु वियुक्त हो गयी है वह फिर से संयुक्त हो जानी चाहिये, वस्तु के बीच का गूढ़ संबंध ताज़ा हो जाना चाहिये, आत्मा को और प्रकृति को एक बन जाना चाहिये।

प्रभु के विचारों में आत्मा की मुक्ति संपन्न शक्तियाँ प्रज्वलित रही हैं, प्रभु के अपरिहार्य आनंद में उनका आवास है। विद्रोहियों की पुकारें, अज्ञानी प्रार्थनाएँ, साटा (अदला बदली) अथवा रिश्वतखोरी उनको छू नहीं पाते। वे परम सत्य की पालक हैं। अपरिवर्तनीय आदेशानुसार ये प्रवर्तमान रहती हैं। अज्ञ जगत् के कार्य को वे साक्षीभाव में तटस्थ होकर देखती हैं, परंतु ऐसा होने पर भी उनके बिना विश्व की संभावना नहीं है। विश्व के पारावार कार्य को स्वयं निश्चल रहकर वे टिकाए रखती हैं। नाश पानेवाले शुभ में और आचरण में आते हुए अशुभ में उनका हिस्सा नहीं होता है। अमरात्मा हमारी दृष्टि से नहीं देखता है। उसे किसी की भी उतावली नहीं है। दैव की दुर्व्यवस्था, मृत्यु की कटुता, और अधःपतनों के होने पर भी एक हस्त हमारे जीवनों के ऊपर

आया हुआ अनुभूत होता है। हमारे लिये यह चैतन्यमयी अमरता को और प्रतिज्ञात देवत्व को सुरक्षित रखता है। सकल विपरीतों में से होकर इसका दैवतवन्त पथ-प्रदर्शन हमें हमारे लक्ष्य पर ले जाता है।

प्रभु का परमानंद और एकात्मकता हमारा स्वाभाविक अधिकार है। परमोच्च दिव्य जन्म हमारे लिये आनेवाला है। अभी जो दूर का जान पड़ता है वह निकट का बन जानेवाला है। अज्ञान के महागर्त पर सेतुबन्ध करने के लिये दयामय दैवत अवतार के आदेश की राह जोह रहे हैं। विश्व में श्रमपूर्वक कार्य कर रही सचेत शक्ति अजात देवों की मिट्टी की मूर्तियों को परम चैतन्य से परिपूर्ण कर देगी। परमात्मदेव की विजय विश्व में उतरकर आयेगी और मनुष्य की आत्मा ऊर्ध्वोर्ध्व में आरोहण करेगी।

यहाँ सब कुछ ही एकाकी हो ऐसा दिखायी देता है, तो भी वह जो एक ही है ऐसा परमात्मा का ही स्वरूप है। अचित् की निद्रा में गुप्त सत्ता के स्वरूप में रहता हुआ यह पंचतत्त्वों के अस्तित्व के पहले से ही यहाँ था। सबका यह उपादान है। सबकी यह आत्मा है। विश्व की महामाता की लीला का यह साथी है। जगत् को यह बनानेवाला है और इसका बनाया हुआ जगत् भी यह स्वयं ही है। यह दृश्य है और द्रष्टा भी है, नाटक है और नट भी है, ज्ञाता है ज्ञात भी है, स्वप्नसेवी है और स्वप्न भी यही है।

जो एक ही है ऐसे दो ये अनेक भुवनों में लीला कर रहे हैं। इनके नाटक के हम पात्र हैं। आत्मा रूप से उसकी और प्रकृति रूप में उसकी शक्ति की जो महालीला है वह है यह सचराचर संसार। प्रकृति ने अपनी मूल महिमा और आनंद को छुपा रखा है, अपने प्रेम को और ज्ञान को छद्मवेश पहनाया है। परमात्मा भी स्वयं अनंत स्वरूप होते हुए यहाँ अंतवन्त अन्य बन गया है। अपनी सर्वसमर्थता, शांति और शाश्वती को इसने जाने दिया है और स्वयं अपने को भूलकर प्रकृति के साथ तदाकार बन गया इसका संचालनकार्य इसने प्रकृति के हाथ में सौंप दिया है और स्वयं केवल साक्षी स्वरूप में सब कुछ देखा करता है। इसने प्रकृति की सेवा को स्वीकार किया है. इसकी आराधना करना आरंभ किया है। एक अलौकिक महायज्ञ में इसने अपना सब कुछ समर्पित कर दिया है। यह सारा अपरंपार जगत् है 'स' और 'सा'।

अगणित तारामंडलों को बांधकर रखनेवाली जो ग्रंथि है वे हैं ये दो। एक ही हैं ऐसे ये दो जो समस्त शक्ति का रहस्य हैं, वस्तुमात्र का महाबल हैं, सबका यथातथ्य है। शक्ति के चरणतल के नीचे यह सुखभरा निश्चेष्ट ढला हुआ है, वैश्विक नृत्य के लिये इसने अपना वक्ष स्थल अर्पण कर दिया है। शिव और शक्ति, पुरुष और प्रकृति, जीव और स्वभाव परस्पर एक दूसरे को समर्पण किये हुए हैं, परस्पर पोषक और तोषक बनकर रहे हैं। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व नहीं है। अनादि काल से उभय ओतप्रोत दो होने पर भी एक और एक होने पर भी दो विश्वलीला का आनंद विलगित कर रहे हैं। अखिल ब्रह्मांड का नाथ हमारे अंदर और वैसे ही सारे संसार में गुप्त रहकर अपनी शक्ति के साथ मानो लुका-छिपी का खेल खेल रहा है।

परमात्मा पुरुषोतम ने अपने गहन मौन में सोई हुई अपनी योगशक्ति को प्रकट किया है और स्वयं अवकाश में प्रविष्ट हुआ है। असंख्य स्वरूपों में इसने अपने एक स्वरूप को ढाला है। मनुष्य देव बने इसीलिये यह मनुष्य बना है। मर्त्य को यह अमर बनाना चाहता है। क्षण को इसने शाश्वती का स्पर्श अर्पण किया है। हम इसके स्वभाव को धारण करें इसीलिये इसने हमारा स्वभाव धारण किया है। हम परमात्मा के पुत्र हैं इसलिये हमको भी परमात्मा जैसा ही बनना है। इसका अंश होने के कारण हमको इसके जैसा ही दिव्य बनना है। हमारा वर्तमान जीवन विरोधाभास जैसा है। परतु इसके सुलझाने की चाबी है स्वयं प्रभु। किंतु इस अवस्था में आया जाये तब तक सभी कुछ एक स्वप्न की छाया जैसा है। चाबी छिपाकर रखी गयी है और वह है अचित के पास। आच्छादन रूप बने हुए आकारों में आत्मपुरुष अगम्य भाव से गुप्त रहा है। विस्मृत मूल धाम में यह यात्री बनकर जाता है। एक समय जो इसका अपना ही था उस सत्य को यह भूल कर खोजता है। लीलाधर और लीला, एक और अनेकरूप, इस एकात्मक स्वरूप की पुनः प्राप्ति न हो तबतक यहाँ की सहस्रगुणी समस्या को समझने के लिये प्रयत्नशील रहता है।

आत्मपुरुष का अपनी लीला की सहचरी के साथ एक प्रेम का करार है। आत्मपुरुष और जड़द्रव्य भिन्न लगते हुए भी दोनों का एक ही नित्य का लक्ष्य है। प्रकृति में प्रलीन आत्मपुरुष अंतर के सागर पर साहस के लिये निकला हुआ नाविक है। कहाँ जाना है उसको यह जानता नहीं है, जीवन का प्रवाह पलटता रहता है, तो भी चुपचाप काम करता प्रारब्ध इसके लिये मार्ग खुला करता जाता है, सांत की असीमताओं का अंत आता नहीं है, चैत्य का अनुभव अविराम आगे चलता ही रहता है। परंतु एक अप्राप्त पूर्णता अदृष्ट की सीमा के ऊपर से इसको आमंत्रण देती है। एक लंबा आरंभ हुआ होता है।

काल के स्रोत के ऊपर सवार हुआ यह नाविक आरंभ में छोटी-छोटी खाड़ियों में अपनी कला सीखता है, परंतु आखिर में यह अगाध अनंतताओं में अपनी नौका को हांकता है। किनारे के धंधे का धन्धेदार बनने के बाद यह अदृष्ट के सामने हिम्मत करता है। विविध प्रकार के जहाजों में सफर करता हुआ यह अकल्पित खंडों को ढूँढ़ने के लिये निकल पड़ता है, धन्यात्माओं के द्वीपों का दर्शन करके, अंतिम जमीन छोड़कर, महासागरों को लांघकर यह शाश्वत वस्तुओं की तरफ मुड़ जाता है, मर्त्य विचार की सीमा के पार हो जाता है, और उसकी आँखें अमृत को देखनेवाली आँखों के साथ मिलन साधती है।

आरंभ में यह अधूरे जगत् का जीव होता है। इसका अंधकार ज्योति के लिये अभीप्सा करता है। इसका मर्त्य जीवन अमृतत्व की खोज करता रहता है। अचित् के अगाध का यह नाविक जड़तत्त्व की नौका की छत पर खड़ा होकर, विचार की ताराजड़ित संतति में से होकर अध्यात्म सूर्य के प्रति जाता है। आज के मानचित्रों में इसके लक्ष्य का स्थान मिलता नहीं है। बीच में आये हुए विस्तृत व्योमों में होकर इसे उस पार पहुँचना है।

किस उद्देश्य से इसने सफ़र शुरू किया है इसकी खबर नहीं है। महामाता ने इसको क्या काम

सौंपा है उसको भी यह जानता नहीं। यह तो केवल माँ का छुपा आदेश अपने हृदय में लेकर जाता है। आगे ऊपर जब यह रहस्यलिपि को पढ़ने के योग्य बनता है तब ही इसको ज्ञान होता है। अदृष्ट के किस राह देखनेवाले बंदर पर इसको उतरना है उसको यह इसके बाद ही जान पाता है। प्रभु की किस महानगरी में जाकर नया मन और नया शरीर इसको प्राप्त करना है, अमर आत्मदेव को मङ्गलमन्दिर में प्रतिष्ठित करना है, सांत और अनंत का संयोग साधना है और दोनों को एकाकार बना देना है, इसका प्रकाश तो उसे पीछे से प्राप्त होता है। संसार की माता के सागर-समीर इसकी भ्रांत नौका को प्रेरित करते रहते हैं। जीवन, मृत्यु और फिर जीवन, इस प्रकार जागता या ऊँघता यह मुसाफ़िरी करता रहता है। विश्वशक्ति का गूढ़ कार्य इसके ऊपर चलता रहता है, और इसी कारण से यह महासमर्थ यात्री कहीं भी ठहर नहीं सकता। मानव जीव के ऊपर के अज्ञान का काला परदा उठा नहीं लिया जाये, प्रभु के प्रभात रात्रि को पकड़ न लें तब तक यह यात्रा चालू ही रहती है। जब तक प्रकृति है तब तक यह पुरुष भी है, क्योंकि ये दोनों स्वरूप में एक ही हैं। नींद में भी यह इसके हृदय में होता है। इसको छोड़ देनेवाले इसके बिना अज्ञेय के आराम में जा नहीं सकते।

एक सत्य समझ लेना है, एक कार्य करना है। प्रकृति की लीला सत्य है; इसके द्वारा एक रहस्यमयता संसिद्ध होती है। विश्वमाता की तरंगमयी लगनेवाली लीला में एक योजना है। इसको निरुद्देश्य लगती क्रीड़ा में एक उद्देश्य रहा है। अपौरुषेय शून्य में एक पुरुष को यह प्रबुद्ध करना चाहती है, एक लगलीन शक्ति को इसकी अजगर निद्रा में से जगाकर, काल में रहनेवाली इसको अकाल की आँखें देखनेवाली बना देना चाहती है। पृथ्वी आवरण रहित प्रभु को प्रकट करना चाहती है। ठीक इसके लिये ही आत्मपुरुष ने अपनी प्रकाशमान अनंतता को पीछे रख दिया है और परमात्मा पर मांस मिट्टी का भार लाद दिया है। मनोरहित अवकाश के क्षेत्र में प्रभु का बीज बोना है और इसे पुष्पित करके अमृतफल प्रदान करनेवाला बनाना है।

(पर्व 01 सर्ग 5 अगले अंक में)

मूल गुजराती लेखक - पूजलाल

हिन्दी अनुवादिका – सरला शर्मा

रूप

ओ निराकार अनन्त के आराधक,
रुप की उपेक्षा मत कर, रुप में ‘वही’ करता है निवास।
हर सीमित मे निहित है वही गहन अपरिमित
अपने पवित्र आनन्द की आवृत्त आत्मा को करता हुआ संचित
अपने हृदय की नीरव गहराई में यह मूर्त्त रुप
छुपाए हुए है ‘उसकी’ रहस्यमयता की सार्थकता को,
यह रुप ही है शाश्वतता का गृह अनोखा,
उस अनश्वर एकान्तवासी की एक कन्दरा।
ईश्वर की गहराई में निहित है एक सौन्दर्य
उस परम अद्भुत का एक विलक्षण कौतुक
जो अपने निवास हेतु इस विश्व को करता है निर्मित।
वह ‘एक’, अपनी अनेकता की शोभा में,
एक गुलाब के पुष्प समान रुप और रंग में होकर प्रस्फुटित,
महान विश्व-पंखुरियों को खुलने के लिए करता है बाधित।

श्री अरविंद

सत्य एक व्याख्या

डॉ अपर्णा रॉय

सत्य केवल एक है, क्योंकि परमेश्वर एक है। अतः सत्य का मतलब है उस परम परमेश्वर को जानना, उसके बारे में सोचना। उसे क्या हम शब्दों में परिभाषित कर सकते हैं? शब्दों की अपनी सीमा है, हमारी समझ की अपनी सीमा है और श्रीमाँ यही कहती हैं कि सत्य को मानसिक स्तर पर, मानसिक स्तर की भाषाओं में अभिव्यक्त करना, परिभाषित करना असंभव है, क्योंकि ईश्वर को परिभाषित करना असंभव है। ईश्वर है या नहीं यह प्रश्न अपने आप में इसका पर्याप्त प्रमाण है कि हमें ईश्वर का पता नहीं है। हमने ईश्वर को अनुभव नहीं किया है। ठीक उसी प्रकार सत्य है और सत्य को बताने वाला या सत्य की उपस्थिति के रूप में हमारे अंदर एक अंश तो है, ऐसा श्रीमाँ ने बता दिया और हमने उसको माना है। हम इस पर विश्वास करते हैं। जिसको हम चैत्य कहते हैं, अंतरात्मा कहते हैं, वह सत्य से परिचित है। उसके पास सत्य की दृष्टि है। वह चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में देख पाती है। किसी ने पूछा भी था श्रीमाँ से कि कैसे समझें कि अंतरात्मा से हमारा संपर्क है? तो श्रीमाँ कहती हैं कि इसका मतलब है कि अभी तुम्हारा संपर्क नहीं है क्योंकि जिस समय संपर्क हो जायेगा, सत्य की अनुभूति हो जायेगी, उसके बाद ये प्रश्न नहीं उठेंगे। इसका मतलब है कि सत्य वह चीज़ है जो हमसे दूर हैं लेकिन हमारे चारों तरफ़ है। हम उससे अनभिज्ञ हो सकते हैं, लेकिन हम उससे घिरे हुए हैं। सत्य की वास्तविकता मानसिक स्तर पर सत्य -असत्य, सही- गलत, त्रुटिपूर्ण ये सब शब्द हमारे इतने सीमित हैं, जिनको हम अपने भौतिक मन की सीमा में, उस सीमित अवधारणा में देखते हैं और उसका निर्णय करते हैं। क्योंकि सत्य अपने आप में सत्य है। किसी ने बहुत खूब कहा है:

"सच घटे या बढ़े तो सच न रहे, झूठ की कोई इंतहा ही नहीं"

सच तो केवल सच है। श्रीमाँ का एक वाक्य है जिसे हम सत्य की परिभाषा मान लें। "परम प्रभु की इच्छा ही, परम सत्य है। वह सत्य जिसे जानने के लिए व्यक्ति अथक प्रयास करता रहा है"। यानी जीवन को सार्थक करने के लिए और जीवन को उच्च जीवन बनाने के लिए हमारा सत्य से बस इतना परिचय काफ़ी होना चाहिए। हम जान जाते हैं कि कुछ है जो सत्य है और उस सत्य तक हमको पहुँचना है और उस सत्य को हमें चरितार्थ करना हैं। उसको कैसे करें? मैं तो अपने जीवन में अभी बस इतना ही कर पाई हूँ कि मान लिया है कि श्रीमाँ का जो प्रतीक चिन्ह है, उसके जो 12 गुण हैं या 12 शक्तियाँ हैं, उन्हें हम अपना आधार बना लें। हमारा सच के साथ इतना संबंध तो है ही कि अगर हम कोई चीज़ पाना चाहते हैं, हमने कोई लक्ष्य निर्धारित कर लिया है, तो उसके साथ हमें सच्चा प्रयास करना चाहिए। उस सच्चे प्रयास में ईश्वर के प्रति सच्चा विश्वास और सच्ची आस्था होना बहुत जरूरी है। हम प्रयास करेंगे, उस प्रयास को ताकत

मिलने के लिए हमारी आस्था मदद करेगी। भगवान हमारी सहायता करने को तैयार है परंतु या तो हमारी आस्था कमजोर हो जाती है या प्रयास अनवरत नहीं रहता है।

सृष्टि के निर्माण की श्रीमाँ ने कहानी बताई कि जब शक्ति इस जड़ पृथ्वी को चेतना से परिपूर्ण करने के लिए उतरी तो उसने चार तत्व लिए थे, सत्य, प्रेम, जीवन और प्रकाश। उसमें पहला था सत्य, जब वह सत्य अहं से युक्त हो गया, अहं जागृत हो गया कि मैं सत्य हूँ, तो शक्ति ने सृष्टि बनाई, बस सत्य ईश्वर से कट गया। जब ईश्वर से कट गया तो सत्य, सत्य नहीं रहा। वो असत्य बन गया, प्रकाश अंधकार हो गया, प्रेम दुख में बदल गया और जीवन मृत्यु में बदल गया। जब सृष्टि का निर्माण ही इन लोभी तत्वों से शुरू हो गया जहाँ शक्ति के हाथ- पैर फूल गए। उसने पुनः ईश्वर का आवाहन किया और कहा कि अब क्या करें? फिर देवता उन दिव्य गुणों को लेकर आये और फिर सृष्टि का सृजन हुआ लेकिन इस सृष्टि में सत्य तो आया परंतु असत्य पहले से विद्यमान था। प्रकाश तो आया परंतु अंधकार भी उपस्थित है। प्रेम भी आया लेकिन प्रेम की विरोधी अनुभूति भी दुख भी तो है। जहाँ -जहाँ ईश्वरीय संपर्क से कटते हैं वहाँ विरोधी शक्ति आ जाती हैं। श्रीमाँ कहती हैं कि पूरी सृष्टि जो है वह असत्य से घिरी हुई है क्योंकि समूचा विश्व झूठ एवं मिथ्या में प्रवेश कर गया है। अतः जो भी कर्म किए जायेंगे वे झूठ पर आधारित होंगे। यह अवस्था बहुत लंबे समय तक बनी रह सकती है और इसी कारण मनुष्य और देश तकलीफ झेलेंगे। इस तकलीफ़ से बचने का एक मात्र उपाय है हम ईश्वर से प्रार्थना करें। प्रार्थना सच्चे मन से होनी चाहिए। सजगता और सचेतना हमारे पास होना अनिवार्य है। हम प्रार्थना करते हैं हे ईश्वर मेरी यह इच्छा पूरी कर दे मैं प्रसाद चढ़ाऊँगा। ईश्वर के साथ व्यापार करने लगते हैं। हमारी इच्छा पूरी हो गई तो ईश्वर -ईश्वर है अन्यथा हम साफ़ इन्कार कर देते हैं कि ईश्वर है ही नहीं। हमारी जो बौद्धिक मानसिकता है उसकी संकीर्णता, उसकी सीमित बौद्धिक क्षमता सत्य से बिल्कुल विपरीत दिशा की ओर जाती है। अगर हम सत्य से जरा भी जुड़े हैं तो हम उसकी किसी भी कठोरता, उसकी किसी भी कठिनाई को हमें स्वीकारना होगा। सत्य कितना भी कठोर हो सच्चाई कठोर होती ही है।

कहते हैं सत्य और असत्य किसी ज़माने में गहरे मित्र थे। दोनों साथ रहते साथ खाते, साथ घूमते थे। लेकिन असत्य जो था वह हमेशा इस ताक में रहता था कि किसी तरह से सत्य पर हावी हो जाए। सत्य तो दिव्यता से परिपूर्ण था। वह बड़ा सजग रहता था, एक दिन दोनों घूमने जा रहे थे, घूमते- घूमते थक गए, एक बगीचा था, वहाँ उन्होंने देखा एक सरोवर है, अच्छी हरियाली है, पेड़ है और फल है। उन्होंने सोचा पहले इस सरोवर में नहा लेते हैं, फिर थोड़े फल खा लेंगे और थोड़ा विश्राम करके आगे जायेंगे। पहले असत्य सरोवर में गया, उसके बाद सत्य गया। असत्य पहले गया था इसलिए पहले निकल आया और उसने बड़ी चालाकी से सत्य के वस्त्र पहन लिए और वहाँ से छूमंतर हो गया। सत्य ने बाहर आकर देखा कि उसके तो कपड़े ही वहाँ नहीं हैं। सत्य दिव्य था वह असत्य के कपड़े नहीं पहन सकता था। उसकी समझ में नहीं आया क्या करें? वह निर्वस्त्र ही दौड़ता चला गया यह सोच कर कि वह असत्य को पकड़ कर उससे अपने वस्त्र ले

लेगा। असत्य तो बहुत तीव्र गति से भाग गया था। अब कहीं भी जाना होता तो असत्य सत्य से पहले पहुँच जाता और उसकी वस्त्रों के कारण जो दिव्यता थी वह लोगों को चकाचौंध कर देती थी और उसका हर जगह स्वागत होता था। सत्य बिचारा वस्त्र हीन जाता तो उसे देखकर लोग मुँह सिकोड़ते थे, उसे देखते ही लोग अपने घरों के दरवाजे बंद कर लेते थे। कहते हैं तब से ही सत्य लोगों की आँखों से दूर होता चला गया। श्रीमाँ कहतीं हैं आज सृष्टि का वही हाल है। पर इसका यह मतलब नहीं है कि सत्य नहीं है।

सत्य की वास्तविकता का क्या अर्थ है? क्योंकि जो सत्य है वो तो वास्तविक ही है। जो अवास्तविक है वह सत्य है ही नहीं। श्रीमाँ कहती हैं ऐसा नहीं है, हमें वह अवास्तविक लग रहा है क्योंकि वह सत्य का विकृत रूप आ गया है। वह आवरण से आवरित है। उस आवरित रूप से जैसे ही वह आवरण हटेगा उसमें से सत्य निकल आयेगा। ठीक वैसे ही जैसे इस समय अंधकार होने जा रहा है, इसका मतलब यह तो नहीं की सूर्य चला गया। हमने भी सत्य की तरफ़ से आँखें मूँद ली है। श्रीमाँ कहती हैं कि सत्य को पहचानने के लिए बहुत ज़रूरी है कि हम अपने मन को शांत करें। हम अपने अंदर प्रवेश करें, अपने अंदर की नीरवता से संपर्क करें क्योंकि वे कहती हैं नीरवता में ईश्वर की, सत्य की अभिव्यक्ति होती है। मन की नीरवता में सत्य अभिव्यक्त हो उठता है और उस अभिव्यक्ति से अगर हम में इतना नियंत्रण है कि अपने चंचल मन को अचंचल बना सकें, अपने प्राण को नियंत्रित कर सकें, ध्यान और एकाग्रता का अभ्यास कर सकें, तो अंदर से उठने वाली इस अभिव्यक्ति का संपर्क हम कर सकते हैं। श्रीमाँ तो यहाँ तक कहती हैं कि एक अवस्था आती है जिसको वह सच्चिदानंद की अवस्था कहते हैं। लेकिन वह स्थिति बड़ी क्षणिक होती है क्योंकि हमारी पकड़ उतनी नहीं होती है। श्रीमाँ कहती हैं अगर उस स्थिति में 3 मिनट भी अपने को रख लो, 3 मिनट, तो फिर तुम जिस स्वाद को पा जाओगे, सत्य की अनुभूति कर लोगे, उसके बाद तुम उससे हटाना नहीं चाहोगे, लेकिन इतना धीरज, इतना नियंत्रण हमें रखना पड़ेगा कि हम उसको अनुभव करने के लिए स्वयं को शांत रखें। सत्य हमारे चारों तरफ़ है, सत्य हमारे अंदर है, पर हमें आदत है बाहर- बाहर ढूँढने की, इसलिए हमें उसका ध्यान रखना है कि किस तरह से अपने अंदर जाकर के उस चैत्य से संपर्क बनाएँ जो हमें समता का भाव दे सकता है।

एक कर्मचारी था जो अपने काम को हमेशा पूर्णता के साथ, ईमानदारी के साथ और लगन पूर्वक करता था। उसका मालिक भी उससे बहुत खुश था, लेकिन मालिक ने देखा कि अचानक दो दिन से वह देर से आ रहा था, उन्होंने सोचा अरे पता नहीं क्या बात है? हो सकता है इसको धन की कमी के कारण कोई असुविधा है, मालिक ने उसकी तनख्वाह बढ़ा दी। उसने सोचा अब उसकी काम के प्रति निष्ठा फिर से आ जायेगी और यह पहले की तरह नियमित समय पर आने लग जायेगा। कर्मचारी के चेहरे पर वेतन बढ़ाने पर कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई, कुछ दिनों बाद वह वैसे ही समय पर आने लगा। एक साल बीतते -बीतते मालिक ने देखा कि वह फिर देर से आया। उन्हें लगा मैंने तनख्वाह बढ़ाई थी तो यह ठीक हुआ था, इसके अंदर कहीं लालच तो नहीं आ रहा है कि मैं देर से आऊँगा तो मेरी तनख्वाह बढ़ा दी जायेगी। यह है मस्तिष्क की गणना, भौतिक

मन की गणना। मालिक ने अबकी बार उसकी तनख्वाह कम कर दी। कर्मचारी पर इसका भी कोई असर नहीं हुआ वो वैसे ही आया और चला गया, दो-तीन दिन बाद वो फिर से नियम से आने लगा। फिर उसका काम वैसे ही अच्छा होने लगा। मालिक को कुछ समझ में नहीं आया। उसने सच्चाई जानने का प्रयास किया। उसने उसे बुलाया और पूछा कि क्या बात है? मैंने पिछले वर्ष तुम्हारी तनख्वाह बढ़ाई तो तुमने कोई खुशी नहीं दिखाई, अब तुम फिर से देर से आने लगे तो मैंने तुम्हारी तनख्वाह कम कर दी तो भी तुमने कोई शिकायत नहीं की। उसने कहा इसमें शिकायत की क्या बात थी? हुआ ऐसा था कि जब मैं पहली बार दो-तीन दिन समय पर नहीं आया था तो मेरी पत्नी अस्पताल में भर्ती थी और हमें पुत्र प्राप्ति हुई थी। उसी समय मैंने देखा आपने मेरी तनख्वाह बढ़ा दी थी, मैंने सोचा ईश्वर कितना कृपालु है मेरे घर में एक सदस्य बढ़ गया तो उन्होंने मेरी तनख्वाह में वृद्धि कर दी। मैंने उसे ईश्वर की देन मान ली और आराम से अपना काम करता रहा। अबकी बार मेरी माँ बहुत बीमार पड़ गई थी वह अस्पताल में भर्ती थी और अब वो नहीं रहीं, अचानक मैंने देखा आपने मेरी तनख्वाह कम कर दी, तो मैंने सोचा ओह हो ईश्वर को पता तो है ही कि एक व्यक्ति कम हो गया, तो मैंने मान लिया कि माँ के हिस्से का जो धन मुझे मिलता था अब बंद हो गया, क्योंकि उनके खर्चे की अब ज़रूरत नहीं है, ईश्वर ध्यान रख रहा है मेरी चीज़ों का। आप जो मुझे तनख्वाह देते हैं वो भी ईश्वर की तरफ़ से देते हैं। हमारी मनोवृत्ति जीवन के प्रति क्या है? इस घटना से स्पष्ट हो जाता है। अगर हम इस समभाव में रहते हैं तो हमारा जीवन ईश्वर के प्रति केंद्रित हो जाता है और अपने आप ही हम सत्य के निकट रहते हैं। इसके लिए ज़रूरत है, प्रतिदिन अपने अंदर जाकर अभ्यास करने की।

श्रीमाँ कहती हैं प्रतिदिन सुबह पाँच मिनट ही सही अपने को शांत करके ईश्वर को अपना दिन सौंप दो, हम को यह अभ्यास हो जाए कि हे ईश्वर आज का दिन तेरे हवाले। छोटे-छोटे कदमों में पूरा जीवन नहीं दे पा रहे हैं, पूरा दिन दे -दें, पूरा दिन नहीं दे पा रहे हैं तो कुछ घंटे दे- दें। इन दो घंटे में या इस एक घंटे में मैं किसी भी चीज़ पर प्रतिक्रिया, अचानक ऐसे नहीं करूँगा। श्रीमाँ का जो फार्मूला है step back पीछे हटो, रुको, हो सकता है कोई निर्णय लेने में तुम्हें 2 मिनट, 5 मिनट, 10 मिनट देरी होगी, पर वह निर्णय आंतरिकता के साथ होगा।

जब श्रीमाँ से पूछा गया की सत्य से संपर्क का मतलब क्या है? उससे हमें क्या फ़ायदा है? और उसको कैसे पहचानें ? श्रीमाँ ने कहा कि मेरे ख्याल से इसका मतलब है अंतरात्मा के साथ संपर्क। जब आप अंतरात्मा के साथ जुड़ जाते हैं तो चीज़ें सही दिखती हैं। निर्णय मानसिक प्रतिक्रिया से नहीं होते हैं, प्राणिक भावनाओं के साथ नहीं होते या होते भी हैं तो इन दोनों के ऊपर चैत्य का पूरा अधिकार होता है, नियंत्रण होता है, अतः आप सत्य से बहुत दूर नहीं रहते हैं। एक गूंगा कैसे बतायेगा कि आम कैसा मीठा है? गूंगा क्या हम बोलने वाले भी कैसे बतायेंगे? हमारे पास शब्द ही कहाँ है? मीठापन है, मधुरता है, मिठास है, पर वाणी की मधुरता, आम की मधुरता, शक्कर की मधुरता, गुड़ की मधुरता सब के अपने अनुभव हैं उन्हें जब तक हम ग्रहण नहीं करेंगे, उनकी पहचान हम कैसे कर पायेंगे? सत्य को जानना कैसे हो? इसके बारे में श्रीमाँ को पढ़ने के

अलावा मेरे पास तो कोई रास्ता नहीं है? मैं देखती हूँ सबसे आसान और बोधगम्य सरल मार्ग जो हमको विश्वास दिला देता है कि यह अभीप्सा के द्वारा होगा।

अभीप्सा भी कैसी? वे कहती हैं क्या तुम जानते नहीं कि तुम किसी एक चीज़ से नहीं बने हो? तुम्हारे अंदर कितनी सत्ताएँ हैं तुम कहते हो कि मैं अभीप्सा करता हूँ, मुझे यह चाहिए, लेकिन कभी मानसिक रूप से कहते हो, कभी प्राणिक रूप से कहते हो। कभी शारीरिक रूप से पीछे हट जाते हो, तो कभी प्राणिक रूप से पीछे हट जाते हो। कोई न कोई एक अंश कहीं से खिसक जाता है उसके बाद होता क्या है? वह समग्रता नहीं रहती। जो अंग विरोध करता है वह बड़ी आसानी से विरोधी शक्तियों के लिए द्वार खोल देता है कि वे उस पर हावी हो जायें। अगर हम सचेतन हैं और अगर हम सजग हैं तो हम हार नहीं मानेंगे, हम फिर उसी नीरवता में जायेंगे, हम फिर प्रार्थना करेंगे, फिर हम ईश्वर की कृपा का आह्वान करेंगे कि हमारी सहायता करो। लोगों ने पूछा हमें कैसे पता चलेगा कि कौन सा हिस्सा है जो हमारा यहाँ पर विरोध कर रहा है? श्रीमाँ कहती हैं तुम्हें पता चल जायेगा अगर तुम मालूम करना चाहोगे तो। वो कहती हें कि लोग कहते हैं कि वे पता करना चाहते हैं, पर वे करते नहीं हैं। अब हम करते ही नहीं हैं तो इसका उत्तरदायित्व भी हमें ही लेना होगा।

सत्य के बहुत सारे स्तर हैं, वह इतना मिश्रित हो गया है कि कई बार हमें भ्रमित कर देता है कि हम तो सत्य के साथ हैं पर होते नहीं हैं। ऐसे में हम कैसे जाने? जब मनुष्य सोचता कुछ है और कहता कुछ है और मांगता कुछ है और चाहता कुछ है तब हम अपने आप को ही धोखा देते हैं। इसीलिए वे कहती है कि योग के पथ पर अगर प्रगति करनी है तो सच्चाई और निष्कपटता बहुत ज़रूरी है।

हमारा अपना एक भाग चाहता है कि हम इस रास्ते पर चलेंगे, हम सच्चाई को जानेंगे, हम सच का साथ देंगे और हम सच्चाई के साथ रहेंगे। लेकिन एक भाग पीछे हट जाता है। वे कहती हैं पूर्ण सच्चाई तब आती है जब सत्ता के केंद्र में भगवान की उपस्थिति की चेतना रहती है। यानी चेतना, चैत्य के स्तर पर आती है। जैसा कि पहले हम लोग कई बार सुन चुके हैं, बोल चुके हैं, पढ़ चुके हैं कि अपने पूरे अस्तित्व का एकीकरण करें। वह एक साधन इतना रामबाण है कि हम चैत्य के संपर्क में आ जाते हैं तो अंधकार वाली चीजें हटने लगती हैं। प्रकाश की किरण आती है। पर यदि जब आपका एक हिस्सा कुछ मांग रहा है और अंदर से कोई हिस्सा कुछ ओर कह रहा है तब हम अपने को धोखा देते हैं। शब्दों का ऐसा गोल- माल करते हैं कि अपने आप को संतुष्ट भी कर लेते हैं कि नहीं हम तो बस यही चाहते हैं, परंतु अंदर से कहीं न कहीं विरोध होता है। उसको हमको देखना होगा। इसके लिए भगवान की उपस्थिति में अपनी चेतना रखें। जब भागवत इच्छा की चेतना रहती है और जब सारी सत्ता अपने बारे में, प्रकाश, स्पष्टता, पारदर्शी, समग्र रूप से इस बात को प्रकट करती है तब जाकर हम कह सकते हैं यही पूर्ण सच्चाई है और यही पूर्ण निष्कपटता है। यानि हमारे अंदर जितनी सत्ताएँ हैं या हमारी सत्ता के जितने विभिन्न अंग हैं, उन सबको चैत्य के संपर्क में लाना हैं, उन सब का चेतयीकरण करना है, उन्हें अनुशासित

करना है, उसका फल यह होता है कि हम उस प्रकाश में रहते हैं, जहाँ से दिव्यता हम पर नज़र रख सकती है।

श्रीमाँ कहती हैं कि जब ऐसा हो कि तुम्हें लगे कि तुम्हारी अभीप्सा फलदायी नहीं हो रही है, तुम्हारी प्रार्थना फलदायी नहीं हो रही है, तो कहीं कोई दुर्बलता है। तुरंत आव्हान करो दिव्यता का या ईश्वरीय सहायता को पुकारो, इससे तुम्हारे अंदर एक ज्योति आयेगी और उस ज्योति की, प्रकाश की किरणें को अपने समस्त अस्तित्व पर डालो। वह अंग जो छुपा बैठा है। उस पर प्रकाश पड़ेगा तब ईश्वर की सहायता उसका रूपांतरण करेगी। कभी-कभी यह अंग जो छुपा बैठा है इतना हठी होता है कि वह स्पष्ट रूप से कहता है कि मुझे नहीं बदलना। हम देखते हैं सत्य को, पर वहाँ जाने से हम डरते हैं, सत्य कहने से डरते हैं। डर हमेशा हमें विरोधी शक्तियों के संपर्क में ले जाता है। विरोधी शक्तियाँ उस पर हावी हो जाती हैं। इसलिए डर को हमें कहीं जगह नहीं देनी चाहिए। संदेह हमें नहीं करना चाहिए।

श्रीअरविन्द की अतिमानस को लाने में सबसे बड़ी समस्या यही थी कि पृथ्वी अभी तैयार नहीं है। उन्हें जितना करना था कर लिया, लेकिन हम अभी तैयार नहीं हैं। हम सभी चाहते हैं कि ईश्वर हमें मिल जाये। मन तो कह देता है, पर क्या ईश्वर आ जाये तो उनका सामना करने को हम तैयार हैं। यहाँ पर, पूरी धरती पर, ईश्वर आ जाए, हर समय वे हमारे साथ रहें, पर हम उनके साथ क्या रह पायेंगे? इसे एक उदाहरण से समझें। एक व्यापारी ईश्वर का बड़ा भक्त था। ईश्वर उससे बड़े प्रसन्न थे, वह हमेशा कहता था हे ईश्वर तू मिल जा, बस मुझे और कुछ नहीं चाहिए। उस व्यापारी की यह बहुत हार्दिक प्रार्थना थी, रोज़ प्रार्थना करता था, एक दिन भगवान को उस पर दया आ गई, वे बड़े प्रसन्न हुए और जैसे ही उसने अपनी पूजा समाप्त की, उसने देखा पीछे दरवाजे से एक ज्योति चली आ रही है और उसके कमरे में वह प्रकाश मुस्कुराता हुआ श्रीकृष्ण के रूप में प्रकट हो गया। हाथ में बाँसुरी, मधुर सी मुस्कान, मीठी सी बोली, उसने देखा ये क्या? बार-बार अपनी आँखें मली और पूछा हे प्रभु सच में तुम हो। हाँ तुम ही तो बुला रहे थे, वह बहुत प्रसन्न हुआ, उनका स्वागत किया, सोचा क्या करूँ ? ईश्वर ने कहा आज मैं तुम्हारे साथ रहूँगा। व्यापारी ने कहा अच्छा आप मेरे साथ रहेंगे, उसने घड़ी देखी और कहा कि अभी तो मुझे दुकान पर जाना है। ईश्वर ने कहा तो क्या हुआ? व्यापारी ने कहा अभी तो मुझे तैयार होना है, फिर खाना खाऊँगा, मुझे तो दिन भर काम करना है। ईश्वर ने कहा कोई बात नहीं तुम काम करना मैं तुम्हारे साथ रहूँगा। व्यापारी ने कहा ठीक है। दोनों ने बड़े प्रेम से नाश्ता किया फिर उठे और दुकान की ओर चल पड़े। दुकान पर पहुँचे, अंदर घुसे, ईश्वर सब कुछ देख रहे हैं, मूक रूप से, बड़ी दुकान है, बहुत समान है, अच्छी खासी दुकान है। अचानक उन्होंने देखा वहाँ उनकी फ़ोटो भी है, व्यापारी ने जाते ही फ़ोटो को प्रणाम किया, दीपक जलाया, अगरबत्ती जलाई, फूल चढ़ाए, घंटी बजाई, प्रसाद चढ़ाया, जब प्रणाम करने लगा तो सोचने लगा कि किधर प्रणाम करूँ। साक्षात भगवान को या फ़ोटो को उसे लगा मेरे चारों ओर भगवान है। सब कुछ हो गया जब वह गद्दी पर बैठने लगा तो सोचा अब क्या करूँ? ईश्वर से कहा आप ही गद्दी पर बैठ जाओ। भगवान ने कहा

नहीं तुम ही बैठो। भगवान अलग से बैठ गए लेकिन जैसे ही उसने अपना व्यापार शुरू किया, अब समस्या आ गई। सामने ईश्वर बैठे हैं, पहला ग्राहक आया, उसने कहा यह सामान इतने रुपए का है, लेकिन मैं आपको इतने रुपये में दे दूँगा। उसने सोचा मैं झूठ कैसे बोलूं? भगवान बैठे हैं सामने। झूठ नहीं बोलूं तो लाभ कैसे होगा। हमारी सब की स्थिति ऐसी ही है।

श्रीमाँ कहती हैं कि कई बार हम जानते हैं सत्य क्या है? क्या गलत है?, क्या सही है? उसके बड़े मान दंड हैं। हर जगह कोई भी चीज़ सही या गलत नहीं हो सकती। कोई भी चीज़ हमेशा अच्छी नहीं और कोई भी चीज़ बुरी नहीं हो सकती। हमेशा एक छोटा बच्चा अपनी माँ को थप्पड़ भी मार देता है और गुस्सा भी करता है, लेकिन वह बहुत प्यारा लगता है। वही सब जब वह बाईस वर्ष की उम्र में करता है तो बुरा लगता है। यह सब अच्छा बुरा हमारी मानसिक अवधारणा के साथ रहते हैं। इसका सत्य से कोई संबंध नहीं होता है।

ऐसे ही हमारे जो जीवन मूल्य हैं, जो हमारे जीवन को अच्छा बनाते हैं, लेकिन श्रीमाँ कहती हैं कि हो सकता है वे बड़े नैतिक हों लेकिन इसके लिए कोई आवश्यक नहीं कि वे आध्यात्मिक स्तर पर आगे बढ़े हों। सत्य को परिभाषित करना इतना आसान भी नहीं है। उसके लिए हमारी हर चीज़ चाहे वह भौतिक स्तर की हो, चाहे वह आध्यात्मिक स्तर की हो, चाहे वह आंतरिक रूप से हो और चाहे वह बाहरी रूप से हो, उसमें सच्चाई का होना बहुत जरूरी है। भक्ति को लेकर लोग कितने नियम बनाते हैं। सच्चा भक्त कैसे बना जाए ? नारद जी तक फेल हो गए इसमें। वे सोचते थे कि वे ही सबसे बड़े भक्त हैं, लेकिन ईश्वर ने साबित कर दिया कि उनकी अपेक्षा वह किसान ज्यादा बड़ा भक्त है, जो कि अपने आम जीवन के सारे कार्यों को करते हुए दिन में तीन बार मुझे याद करता है। ऐसे ही एक घटना श्रीमाँ सुनाती है। पेरिस में एक गिरजाघर था नॉट्रेडेम का। वहाँ एक पादरी था, वह पादरी बाद में बना, पर वस्तुतः वह एक नट था, वह चुपचाप देखा करता था कि किस तरह से लोग उनकी अपनी विशेष वेशभूषा के साथ गिरजाघर पहुँचते हैं। एक प्रशिक्षित ढंग से प्रार्थना करते हैं। जितने नियम हैं उनका पालन करते हैं नियमों के अनुसार बैठना, पढ़ना, बोलना और फिर बाहर आना। बाहर आकर वे अपना आम जीवन जीते हैं। उनकी प्रार्थना उतनी देर के लिए सीमित होती है, उसका भी मन होता कि मैं भी गिरजाघर में जाऊँ और मैं भी कुछ करूँ, लेकिन हिम्मत नहीं होती थी। उसके पास न तो वैसी वेशभूषा थी, न वह पढ़ा लिखा था, न ही उसको वह प्रार्थना आती थी और न ही उसे कोई गिरजाघर में प्रवेश करने देता था। एक दिन उसने सोचा जब सब चले जाएँगे तो मैं अंदर घुस जाऊँगा। वह अंदर चला भी गया और सोचने लगा मैं अब यहाँ क्या करूँ? मुझे तो कुछ आता नहीं है, उसने तय किया कि मैं तो एक नट हूँ, मैं अपनी कलाकारी से ही इन्हें प्रसन्न करूँगा और उसने अपनी पूरी कलाकारी दिखाई, जितना कुछ उसको आता था। आधे घंटे तक अपनी पूरी कलाकारी दिखाई जब वह थक गया तो हाथ जोड़ कर बाहर आ गया। ऐसा उसने तीन-चार दिन किया। एक दिन उसे किसी ने देख लिया और पादरी से जाकर उसकी शिकायत कर दी। यह कैसे गिरजाघर में घुस जाता है, वहाँ पता नहीं क्या- क्या करता है? गिरजाघर की पवित्रता नष्ट कर दी आदि- आदि। पादरी बड़े

सत्य निष्ठ थे, उन्होंने सोचा मैं अपनी आँखों से देख लूँ कि वह क्या करता है फिर दंड दूँगा? एक दिन चुपके से उन्होंने नट को गिरजाघर में जाते हुए देखा, नट के सारे करतब भी देखे और सोचा इसको तो मैं जरूर दंड दूंगा, तभी वे क्या देखते हैं, कि जब नट थक कर बैठ गया तो सामने जो मूर्ति थी उसमें से प्रभु निकल आये, उस नट का सिर अपनी गोदी में रख लिया और बड़े प्यार से उसका पसीना पोंछा, उसको आश्वासन दिया, अपनी प्रसन्नता दिखाई और उसके बाद वापस उठकर वहीं चले गए। पादरी ने अपनी आँखों से यह सब देखा, अब वह दंड किसको दे। पादरी ने तुरंत उसको बुला लिया, हाथ जोड़े कि भाई तेरी भक्ति के सामने हमारी प्रार्थना, हमारा प्रशिक्षण कुछ भी नहीं और उसको वहाँ का पादरी बना दिया।

सच्चाई वास्तव में हृदय की सच्चाई होती है। हमारा हृदय, हमारा मन, हमारे प्राण, हमारा शरीर और शरीर का एक-एक कोषाणु, अगर सत्यनिष्ठा से भरा हुआ है, ईमानदारी से भरा हुआ है, सच्चाई से भरा हुआ है, तो सत्य हमारे साथ है। सत्य में कहीं कोई ऐसी चीज नहीं हो सकती जो हम इंसान से दूर हो या हम ऐसा कुछ नहीं कर रहे हैं जो हम सच के साथ ना रहे। लेकिन होता यह है कि हमारी आँखें अभी खुल नहीं पाई, अनुभूति हमारे पास में नहीं आई। लेकिन माँ कहती हैं, मैं भी सबसे कहती हूँ माँ के इन बारह गुणों के लिए और खुद को भी समझती हूँ कि पहले माँ के बारह गुणों का अभ्यास ही हम कर लें अभी हम बहुत पीछे हैं। मैं तो अपने को नर्सरी में भी नहीं मानती हूँ लेकिन उसका अभ्यास करने के लिए प्रतिदिन सचेतन रूप से अगर हम यह सोचें कि क्या हमने आज अभ्यास किया?

फिर एक जगह किसी ने श्रीमाँ से पूछा कि चारों तरफ असत्य है, तो असत्य भी तो भगवान है? श्रीमाँ कहती है, हाँ असत्य भी भगवान है किसने कहा कि असत्य भगवान नहीं है? यह एक विकृत रूप है, पर इससे कैसे निकलना है? इस परेशानी से अगर तुम दुखी हो, तो क्या तुम्हें पता नहीं कि तुम खुद वही हो? अनंतता में जाओ, शाश्वतता में जाओ क्योंकि हमारे साथ विरोधी शक्तियाँ जब आती है, जब रास्ते की कठिनाइयाँ हमें परेशान करती हैं, हम विक्षुब्ध हो जाते हैं, हम थोड़ी देर के लिए भूल जाते हैं कि ईश्वर से कह कर तो देखें। हम अपना दिमाग चलाने लगते हैं। उस दिमाग को जिसकी गणना इतनी कमज़ोर है कि 2 और 2 चार के अलावा कुछ कहती ही नहीं है। 2 और 2 पाँच भी हो सकता है इसको हमारा दिमाग मानता ही नहीं है तर्क की कसौटी चलती है पर भगवान तर्क के ऊपर हैं। उनसे किसी लॉजिक के द्वारा बात करना है तो हम बड़े ही छिछले हो जाते हैं। हमको ध्यान रखना है कि हम अनंत हैं, हम ही आनंद हैं। इस "अहं ब्रह्मास्मि" के इस अहं को उसे छोटे से में नहीं लाना है, उसे संकीर्ण "मैं" में नहीं लाना है। बल्कि इस अस्तित्व को, इस "मैं" को उस परम सत्ता के साथ जोड़ना है। "मैं" उसके साथ, अब उसको हम बना दें, तो यह "अहं" नहीं रहता है। 'हम' जो है वह ईश्वर से जुड़ा है, "अ" तो नहीं को बताता है। हमको इस बात का ध्यान रखना है। इसके लिए बहुत ज़रूरी है कि हमारी चेतना उस स्तर पर रहे। अपने चेतना को उत्कर्ष की तरफ़ ले जाना बहुत ज़रूरी है। उसमें ईश्वर की उपस्थिति को याद रखना है। उसमें वह विनम्रता होनी चाहिए, रहीम वाली विनम्रता, जो दान

करते थे और आँखें झुका लेते थे। उनसे जब पूछा गया कि-

ऐसी देनी दैन जु, कित सीखे हो सेन। ज्यों-ज्यों कर ऊँचौ करो, त्यों-त्यों नीचे नैन॥

हे मित्र तुम दान देने के समय आँखें नीची क्यों करते हो यह तुम्हारी विनम्रता की पराकाष्ठा है। तो रहीम दास जी ने जवाब दिया-

देनहार कोई और है, भेजत है दिन रैन। लोग भरम हम पर करें,याते नीचे नैन॥

लोग समझते हैं मैं दे रहा हूँ, जब की देने वाला तो और कोई है। इसलिए शर्म के मारे, देते समय मेरी आँखें नीचे झुक जाती हैं। मैं तो उसका माध्यम हूँ। श्रीमाँ भी यही कहती हैं कि अपने आप को ईश्वर का एक यंत्र बना दो, सच्चा यंत्र तो सत्य के साथ ही चलेगा। जहाँ- वहाँ से भटक जाते हैं, भूल जाते हैं, तो होता यह है कि हम विरोधी शक्तियों के हाथों के खिलौने बन जाते हैं और कठपुतलियाँ बन जाते हैं। सत्य है उधर, हमको पता है, पर हम मुड़ जाते हैं। हम यह भी भूल जाते हैं कि हमें तो ईश्वर के साथ रहना है या ईश्वर तो हमारे साथ ही है। क्षणिक कठिनाई आई, क्षणिक दु:ख आया और कहीं से विरोधी शक्ति सहानुभूति भरा कुछ पैगाम भेज देती हैं हमें बड़ा अच्छा लगता है। हम तो कड़वाहट लेना ही नहीं चाहते हैं। हम तप प्रसाद में सिर्फ लड्डू चाहते हैं। कोई कड़वा फल प्रसाद में मिल जाए तो हमारा मुँह बिगड़ जाता है। प्रसाद के प्रति आस्था क्यों मिट जाती है? कृपा -कृपा है, चाहे दु:ख के रूप में आए, चाहे कष्ट के रूप में आए, चाहे आघात के रूप में आए, चाहे सुख के रूप में आए और चाहे दु:ख के रूप में आए। भगवत् कृपा किसी भी रूप में आ सकती है यहाँ तक की मौत के रूप में भी। क्या हम चेतना की आस्था के उस स्तर पर, उस अटलता में हैं कि हर चीज़ को प्रसाद मान ले और हर चीज को कृपा मान लें, तो हम सत्य के साथ हैं, तब हो नहीं सकता कि हमें सत्य की अनुभूति न हो। अतः सत्य है यहीं, हमें केवल उसे अनुभव करना है। हम केवल इतना सत्य से जुड़ सकते हैं कि उसके पाने के रास्ते को खोजें, उसके प्रति सजग रहे और सचेतन रहें। सत्य को पाने का दवा तो दूर की बात है, कम से कम फालतू के चक्कर में ना पड़ें कि सत्य को परिभाषित करें। क्योंकि श्रीमाँ कहती हैं "सत्य केवल एक है" क्योंकि "ईश्वर एक है"। हमारी कठिनाइयाँ बढ़ इसलिए जाती है क्योंकि विरोधी शक्तियाँ हमारे मन में, खास तौर पर हमारे भौतिक मन में अपने ऐसे तत्व घुसा देती हैं, जो हमको भटका देती हैं। भय आ जाता है, संदेह आ जाता है।

छोटा बच्चा कोई गलती कर देता है और वह अचानक सत्य की ओर चल देता है। उसे डर लगता है कि उसे अब सज़ा मिलेगी। लेकिन जिस दिन वह उसको स्वीकार कर लेता है, वह कहती हैं तीसरा रूप जो सत्य या असत्य का होता है वह यही है। हम जानते हैं कि यह सत्य है पर हम असत्य को चुनते हैं। श्रीमाँ कहती हैं कि मनुष्य के पास चुनाव का अधिकार हमेशा है, चुनाव उसे ही करना होगा, सत्य को या असत्य को, संदेह क्यों करते हैं सत्य पर? इसीलिए क्योंकि हमारी चेतना का स्तर अभी चैत्य से दूर है। हम निम्न भौतिक प्राण और निम्न भौतिक मन के चंगुल में फंसे हुए हैं, जहाँ हमें सुविधा दिखती है। किसी ने माँ से पूछा कि माँ हम आपकी सारी बातें

मान लें और आप में हमेशा आस्था रखें, तब हमारा सब कुछ आसान हो जायेगा। माँ ने कहा आसान क्यों चाहते हो? ताकि तुम्हारी तामसिकता को शरण मिले। कुछ भी आसान क्यों हो? जितना ऊँचा लक्ष्य उतनी बड़ी कठिनाई। जितनी बड़ी कठिनाई, समझ लो कि तुम उस प्रगति की ऊँचाई की ओर अग्रसर हो रहे हो। लेकिन हर प्रयास में अहंकार से बचना है, मैं कर रहा हूँ, मुझे चाहिए, इस "मैं" से हटना है क्योंकि अहंकार हृदय के द्वार को बंद कर देता है। वे कहती हैं कि सत्य ईश्वर के द्वार की कुंजी है, जहाँ से हमने दरवाज़े बंद किए हैं, उस दरवाज़े को खोलने की कुंजी है "सत्य"। अगर हम सच्चाई के साथ, सत्य निष्ठा के साथ, आगे बढ़ रहे हैं, सच्चा प्रयास कर रहे हैं, तो हम उस दरवाज़े को खोल सकते हैं। उसके साथ जा सकते हैं। हम को इतना ही ध्यान रखना है कि हर मनोवृत्ति में, हर कार्य को करते समय, हर विचार को करते समय, मैं-मैं की जगह तुम- तुम, कहो। उसके बाद तो फिर तुम ही तुम रहेगा। वह तुम तो परम सत्य ही है, इस अनुभूति के साथ सत्य को जानना और शब्दों में बोलना, पढ़ना बहुत ज़मीन आसमान का फर्क है। हमारा यह प्रयास जो है इसमें एक सच्चा संकल्प होना चाहिए, संकल्प भी समग्रता के साथ। मन, प्राण और शरीर तीनों का एकत्विकरण, चैत्य के साथ तीनों का शुद्धिकरण, तीनों का प्रशिक्षण, तब हम यह समझ पायेंगे कि दर असल असत्य भी कहीं कुछ नहीं है, सच्चाई में कहीं भी कोई असत्य नहीं है क्योंकि सच्चा सिर्फ सत्य है। असत्य सच्चा नहीं है, वही उस पर आवरण है। उसके बारे में सोचना ही नहीं क्योंकि साधना जो है वह सकारात्मक दिशा है, नकारात्मक दिशा नहीं है। हम ऐसा कुछ सोचेंगे ही नहीं, यह पर्दा उठ जायेगा और असत्य रूपांतरित होकर सत्य रूप में आ जायेगा। अपने आप को बार-बार याद दिलाना है सोहम -सोहम, हम ही हैं वो, लेकिन अपने अंदर से उसको बाहर निकाले तभी यह संभव है। माँ की कुछ पंक्तियों के साथ अपनी बात खत्म करती हूँ जो हमें सावधान करती हैं।

वे कहती हैं असत्य मृत्यु का सबसे बड़ा मित्र है, एक बार जब असत्य को जीत लिया तो समस्त कठिनाइयाँ दूर होंगी, किंतु क्या सभी मानवीय सत्ता में झूठ, सत्य मिश्रित नहीं है यह पृथ्वी अभी तक अज्ञान और असत्य के द्वारा परिचालित है, किन्तु सत्य की अभिव्यक्ति का समय आ रहा है, यह विश्व असत्य का स्थल है और केवल भगवान की उपस्थिति की नीरव गहराई में ही सत्य की अचंचल शांति को हम पा सकते हैं। सत्य असत्य से अधिक बलवान है, वह एक ऐसी अमर शक्ति है जो विश्व का संचालन कर सकती है। हमारा निर्णय होना चाहिए, शब्दों में सत्य, कर्म में सत्य, संकल्प में सत्य और भावनाओं में सत्य। यह एक चयन है, सत्य की सेवा अथवा विनष्ट हो जाने के बीच मनुष्य द्वारा चयन। चयन हमें करना है, चुनाव की स्वतंत्रता माँ हमें हमेशा देती हैं क्योंकि वह कहती है जो विकास करना है वह तो होगा ही। पर क्या तुम उसमें सहयोग दोगे? तो वह निश्चय ही गतिशीलता के साथ होगा। एक अचल सत्य निष्ठा ही आध्यात्मिक उन्नति के लिए सुनिश्चित उपाय है। श्रीमाँ सत्य निष्ठा को पहला गुण मानती है। वहीं से सत्य का परिचय हमें होने लगता है। नष्ट होने से पूर्व असत्य पूरे ज़ोर से ऊपर उठता है और आघात करता है तो भी आश्चर्य की मनुष्य केवल विनाश के सबक को याद रखते हैं। इससे पहले कि असत्य आक्रमण करें क्या

वह सत्य की ओर अपनी चेतना एवं दृष्टि करेंगे? माँ यह हम से पूछती हैं। वे कहती हैं मैं लोगों को एक "प्रयास" करने की सलाह देती हूँ, जिससे यह अशुभ तत्व अपना सिर ऊपर नहीं उठा सके और वह सलाह है दृढ़ता पूर्वक स्वीकार करो की एकमात्र सत्य ही हमारी रक्षा कर सकता है। अगर हमें सचमुच आगे जाना है, जीवन को उन्नति पर, प्रगति पर ले जाना है, सत्य को पाना है, तो उसे सत्य पर ही निर्भर होना होगा। उसे सत्य के प्रति आस्था रखनी होगी और विश्वास रखना होगा कि वही हमारा सबसे बड़ा रक्षक है। छोटे-मोटे परिणाम और प्रतिक्रियाएँ जो भी आए, सत्य का आँचल पकड़ने से या सत्य का हाथ पकड़ने से उसे स्वीकारें क्योंकि अंततः हमारा रक्षक वही है।

संसार अपने आध्यात्मिक जीवन की रक्षा करने के लिए युद्ध
कर रहा है जिसे विरोधी और आसुरिक शक्तियों के
आक्रमण ने संकट में डाल रखा है।
हे प्रभो ! हम यह अभीप्सा करते हैं कि हम तेरे वीर योद्धा बनें
ताकि तेरी महिमा
इस पृथ्वी पर अभिव्यक्त हो।

डॉ निरंकार अग्रवाल
(1943-2024)

अपने पार्थिव निवास से शांतिपूर्ण प्रस्थान

"नाथ, हम धरती पर तेरा रूपान्तर का काम पूरा करने के लिए हैं। यही हमारा एकमात्र संकल्प और हमारी एकमात्र धुन है।"

5 दिसंबर 1943 को जन्मे श्रीअरविन्द और श्रीमाँ को समर्पित डॉ. निरंकार अग्रवाल 1986 में श्रीअरविन्द आश्रम दिल्ली शाखा में आश्रमवासी के रूप में शामिल हुए । 1986 से 2008 तक उन्होंने नैनीताल में साहसिक युवा शिविरों का संचालन किया और नैनीताल और देश के अन्य क्षेत्रों में श्रीअरविन्द राष्ट्रीय एकता शिविर भी आयोजित किए। उन्होंने 2012 में इसके प्रारंभ से ही आश्रम की मासिक ई-पत्रिका 'Realisation' का संकलन, डिज़ाइन, संपादन और विमोचन लगभग अकेले ही किया। यह महान व्यक्तित्व 31 मई 2024 को अपनी आगे की यात्रा के लिए हमसे विदा हो गया। हम उनसे और उनके काम से प्रेरित होते रहेंगे।

आश्रम-गतिविधियाँ

7 मई 2024

तारा दी एवं डॉ रमेश बिजलानी श्री रामकृष्ण मिशन, दिल्ली केंद्र में स्वामी सर्वलोकानंद जी से भेंट करते हुए

11 मई 2024

ध्यान-कक्ष में डॉ जे.पी. सिंह (सुल्तानपुर) द्वारा 'धर्म की अवधारणा' पर वार्ता

16 मई 2024

पांडिचेरी आश्रम के डॉ आलोक पाण्डेय द्वारा ध्यान कक्ष में वार्ता

21 मई 2024

ध्यान-कक्ष में श्री मियाँ रहमान देसाई द्वारा रुद्र वीणा वादन

29 मई 2024
बन निवास, नैनीताल में श्री अरविन्द-देहांश-स्थापना-दिवस

7 जून 2024
मधुबन, रामगढ़ में श्री अरविन्द-देहांश-स्थापना-दिवस

19 जून 2024

तारा दीदी वन निवास, नैनीताल में रैपलिंग करती हुई

21 जून 2024

अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस पर आश्रम के समाधि-प्रांगण में आश्रम-वासियों एवं प्रशिक्षार्थियो ने 'आसन और' प्राणायाम' किया।

23 जून 2024

तारा दीदी, वन निवास, नैनीताल में फ्रांस दूतावास के प्रथम सचिव, पियरिक फ़िलोन आशिदा के साथ

24-25 जून 2024

डॉ अपर्णा रॉय, श्रीअरविन्द आश्रम (दिल्ली शाखा) का प्रतिनिधित्व करते हुए डॉ अपर्णा रॉय, श्रीअरविन्द सोसाइटी सुल्तानपुर केंद्र से (आयोजक) डॉ जे पी सिंह एवं सरस्वती विद्या मंदिर इंटरमीडिएट कॉलेज के प्राचार्य श्री अवधेश कुमार मिश्र के साथ

29 जून 2024- संध्या 6:30 से 7:30 बजे

ध्यान-कक्ष में आश्रम के वरिष्ठ साधक और हम सबके प्रिय निरंकार भैया की स्मृति में प्रार्थना सभा का आयोजन हुआ ,जिसमें उपस्थित सभी लोगों ने उन्हें भावपूर्ण श्रद्धांजलि दी... ।

साप्ताहिक गतिविधियाँ

(SAAM पुस्तकालय के नजदीक कमरा 005 में)

मंगलवार – डॉ अपर्णा रॉय द्वारा 'आंतरिक रूप से जीना' (Living Within का हिन्दी रूपान्तरण) संध्या 5.30 से 6.30 स्वाध्याय कक्षा

वृहस्पतिवार – श्री प्रशांत खन्ना द्वारा 'सावित्री' पर प्रातः 11.30 से 12.30

शुक्रवार – श्री प्रशांत खन्ना द्वारा 'गीता' पर प्रातः 11.30 से 12.30

ध्यान कक्ष में संध्या 7 से 7.30

शुक्रवार - डॉ रमेश बिजलानी की वार्ता

शनिवार - डॉ अपर्णा रॉय की वार्ता

रविवारीय वार्ताएँ – ध्यान कक्ष में – प्रातः 10 से 11.30

5 मई

डॉ श्रीविद्या - The Intricacies of Being Consciously Charitable (Based on the chapter on Charity in the The Mother's 'Words of Long Ago')

भजन – डॉ मिठू पाल

12 मई

सुश्री मोनिका गुलाटी - चौकीदारी - Guarding the Inner Sanctuary

भजन – आदित्य और ऋचा

19 मई

डॉ मंकुल गोयल -The Realisation of the Cosmic Self ((Based on Sri Aurobindo's The Synthesis of Yoga; Part 2, Chapter 10)

भजन – सुश्री मोनिदीपा घोष

26 मई

डॉ मिठू पाल -The Flame of Consecration (Based on the Mother's prayer dated 4 April 1914 in Prayers and Meditations)

भजन – डॉ मिठू पाल

2 जून

डॉ अपर्णा रॉय – क्रोध योग पाठ में बाधा

भजन – सुश्री मोनिदीपा घोष

9 जून

डॉ मंकुल गोयल - The Modes of the Self (Based on Sri Aurobindo's The Synthesis of Yoga; Part 2, Chapter 11)

भजन - सुश्री सपना मुख़र्जी

16 जून

डॉ मिठू पाल - Honest Introspection (Based on the Mother's prayer dated 7 April 1914 in Prayers and Meditations)

भजन – डॉ मिठू पाल

23 जून

डॉ. रमेश बिजलानी - The Needed Synthesis (Based on Sri Aurobindo's 'Essays in Philosophy and Yoga, P 439)

भजन – अदित्य एवं अरुणिमा

30 जून

सुश्री मोनिका गुलाटी - Meeting Pain with Compassion

भजन – सुश्री बसुंधरा मुंशी

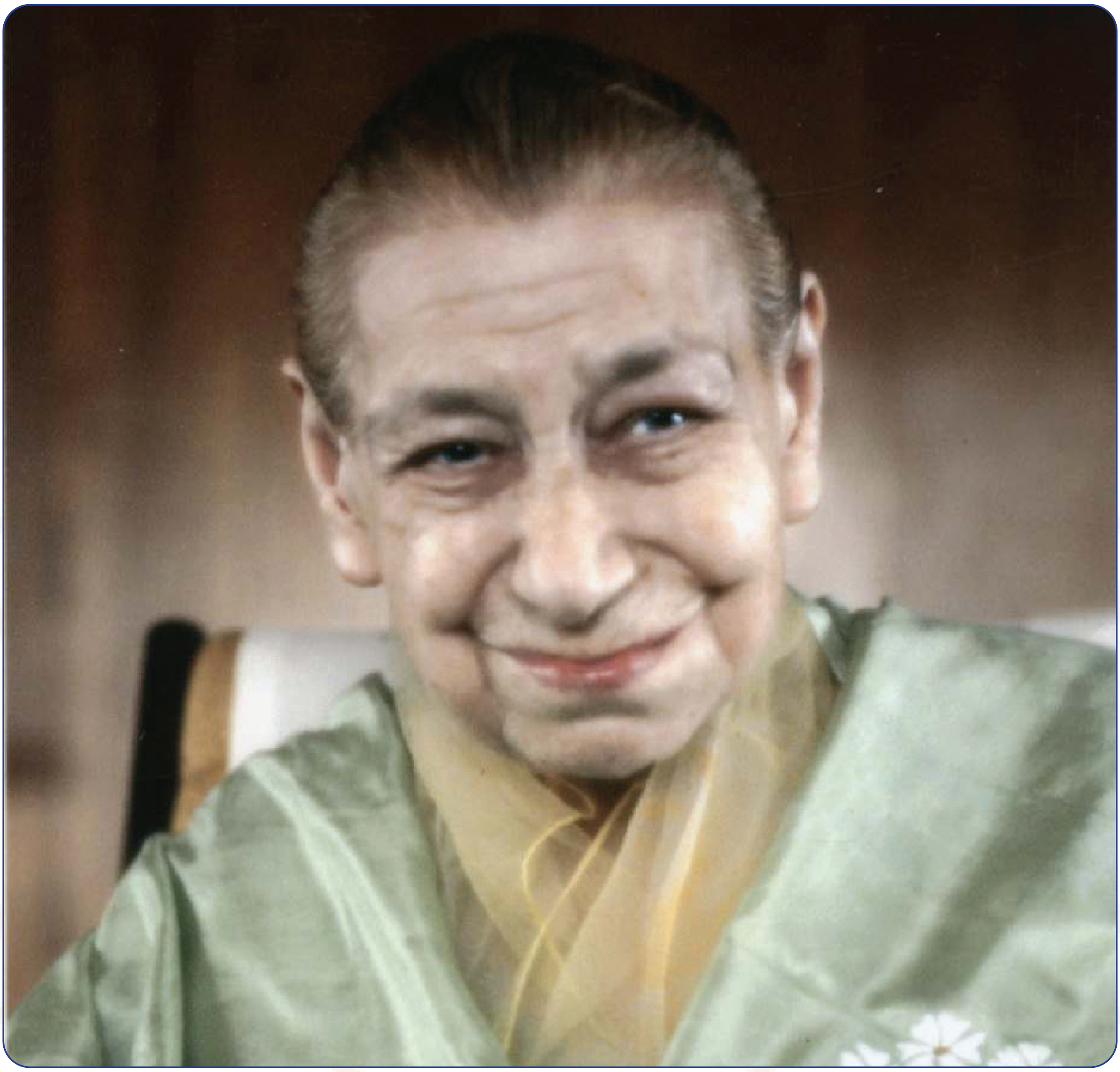

"जिस भगवान को हम खोजते हैं वह कहीं दूर और पहुँच के बाहर नहीं है। वह अपनी सृष्टि के हृदय में है और वह हम से बस यही चाहते हैं कि हम उन्हें खोजें और अपने-आपको रूपान्तरित करके उन्हें जानने योग्य बनें, उनके साथ तादात्मय होकर अन्ततः सचेतन रूप से उन्हें अभिव्यक्त करें। हमें अपने आपको इसके लिये अर्पित कर देना चाहिये; हमारे जीवन का यही सच्चा कारण है और इस उच्चतम उपलब्धि की ओर हमारा पहला ठहराव है अतिमानसिक चेतना की उपलब्धि।"